१) आचार्य श्री जवाहरलाल जी

जैन परंपरा के एक ओजस्वी तेजस्वी वक्ता के रुप में जवाहर लाल जी का योगदान विशिष्ट है. आप जैन शास्त्रों के मर्मज्ञ एवं अद्‌भुत भाष्यकार रहे. आपने विविध धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन किया. गाँधी जी के साथ भारत के स्वाधीनता संग्राम में आपने जम कर हिस्सा लिया. खद्दर के प्रयोग का आधार आपकी दृष्टि में आर्थिक या राजनीतिक से बढ़कर अहिंसा पालन का था. चरबी लगाए हुए मिल के कपडों का उपयोग करने से खादी का उपयोग करने में अहिंसा का पालन अधिक होता है यह आपकी मान्यता रही. आपने स्वयं खद्दर का इस्तेमाल किया और श्रावकों को भी खादी को स्वीकारने का उपदेश बहुत आग्रहपूर्वक किया.

अपने व्याख्यानों के माध्यम से आपने गोपालन का महत्व समझाया. आप ब्रह्मचारी रहे. अहमदनगर में तिलक जी से संवाद हुआ. राजकोट में सरदार पटेल और गाँधी जी ने आपके दर्शन किए. इनके अलावा विट्ठलभाई पटेल, जमनालाल बजाज, विनोबा भावे, ठक्कर बाप्पा, रामेश्वरी नेहरु, कस्तुरबा, सेनापति बापट आदि से आपका परिचय हुआ.

विक्रम संवत १९३२ कार्तिक शुक्ल चतुर्थी को थांदला (म.प्र.) में आपका जन्म हुआ. सोलह वर्ष की अवस्था में आपने जैन भागवती दीक्षा का अंगिकार किया. संवत २००० में आषाढ शुक्ला अष्टमी को भीनासर (बीकानेर-राजस्थान) में आपका स्वर्गवास हुआ. आपकी दृष्टि उदार, प्रगतिशील तथा विचार राष्ट्रचेतना और विश्वमैत्रीभाव से ओतप्रोत थे. आपने भारतीय स्वाधीनता संग्राम, सत्याग्रह आंदोलन, अहिंसक प्रतिरोध, खादी धारण, गो पालन, अछुतोध्दार, व्यसन मुक्ति, बाल विवाह, वृध्द विवाह, सूदखोरी, मृत्युभोज जैसी कु प्रथाओं के विरोध में जनमानस को जागृत किया. आपके राष्ट्रधर्मी, क्रांतिकारी, आत्मलक्ष्यी, व्यक्तित्व से प्रभावित हो कर तिलक जी, महात्मा गाँधी जी, पंडित मदनमोहन मालवीय, सरदार वल्लभभाई पटेल के समान राष्ट्रधर्मी नेताओं ने आपका संपर्क पा कर अपने आपको धन्य समझा. बहुजन भी आपके संपर्क में आए. ' जवाहर किरणावली ' शीर्षक से ५१ खंडों में प्रकाशित आपका प्रेरणास्पद विशाल साहित्य विश्व मानवता की मूल्यवान निधि है. वह ओज, शक्ति, चरित्रनिर्माणपरक जीवन साहित्य है. इन ग्रंथों में जैन तत्व चिंतन के साथ रामायण, महाभारत से संबध्द लेखन हैं. ' भगवती सूत्र ' पर आठ खंडों में किया हुआ आपका विवेचन विशिष्ट माना गया है. आपने सत्पुरुषों की जीवनियाँ लिखने का कार्य किया है. ' गृहस्थ धर्म ', ' जीवन धर्म ',' नारी जीवन ' से सबंधित आपका लेखन विशेष अर्थों में शोभित है.

मध्यप्रदेश के मालवा प्रांत में झाबुआ रियासत के अंतर्गत थांदला नामक जो कस्बा उसके चारों ओर भीलों की बस्ती है. इसी बस्बके में ओसवाल जाति शिरोमणि, कवाडगोत्रीय सेठ ऋषभदास जी नामक सद्‌गृहस्थ रहते थे. उनके दो बेटे थे धनराज जी एवं जीवनराज जी ! धनराज जी के तीन बेटे और एक कन्या थी. बेटे थे खेमचंद जी, उत्तमचंद जी और नेमचंद जी, कन्या ने आगे चल कर पूज्य श्री धर्मदास जी बहाराज के संप्रदाय में दीक्षा ग्रहण की. वहीं पर धोका गोत्रीय सेठ श्रीचंद जी रहते थे. उनके दो बेटे थे पूनमचंद जी और मोतीलाल जी !मोतीलाल जी की दो संताने थीं. नाथी बाई और मूलचंद जी ! जीवराज जी का विवाह नाथी बाई से संपन्न हुआ. इनके सुपुत्र जवाहरलाल जी महाराज. सुकन्या जडाव बाई. दो साल की उम्र में मातृछत्र बिखर गया. पिता जी ने उनका लालन-पालन किया. पाँच साल की उम्र में पिता जी का देहावसान हुआ. अपने मामा जी श्री मूलचंद जी धोका के घर थांदला में जवाहर जी का बचपन बीता. मामा जी कपडे के प्रतिष्ठित व्यापारी थे. जवाहर जी ने जैनागम को तो विशेष रुप से पढ़ा ही, इसके साथ उपनिषद, गीता, संत साहित्य, गाँधी साहित्य का भी स्वाध्याय किया. उनके प्रवचनों से स्पष्ट होता है कि उनका अध्ययन तात्विक, मार्मिक एवं सम्यक् था. कुछ गुजराती, हिंदी और गणित सीख कर ही आपने स्कूल छोड दिया. बचपन में जवाहरलाल जी अनेक दुर्घटनाओं से बाल-बाल बच गए. कई बार सन्तिपात जैसे भयंकर रोगों का सामना करना पडा. ग्यारह वर्ष की उम्र में उन्हें मामा जी के साथ कपडे की दुकान सँभालनी पडी. पूरे मनोयोग से इस काम में उन्होंने निपुणता पाई.

इसी काल में उन्होंने पूज्य धर्मदास जी संप्रदाय के मुनि श्री गिरिधरलाल जी के प्रवचन सुने. धर्म के प्रति आकर्षण का भाव जागृत हुआ. सम्यकत्व ग्रहण किया. इसके पश्चात् उनका ईहलौकिक जीवन आरंभ हुआ. इस बीच मामा जी का निधन हो गया. दुकान की पूरी जिम्मेदारी कंधों पर आई. विधवा मामी जी और ममेरे भाई घासीराम जी के पालन पोषण की जिम्मेदारी भी उनपर ही आई. इन्हीं दिनों थांदला में मुनिवर्य श्री राजमल जी महाराज के शिष्य मुनि श्री घासीलाल जी महाराज तथा मगनलाल जी महाराज और श्री घासीलाल जी महाराज के शिष्य श्री मोतीलाल जी महाराज तथा देवीलाल जी महाराज पधारे थे. आपने मुनियों के दर्शन किए . प्रवचन लाभ किया. मुनि धर्म का स्वरुप समझ लिया. घासीदाम जी महाराज ने केशलोंच किया. महाव्रतों का उच्चारण कर दीक्षा प्रदान की. गुरु श्री मगनलाल जी महाराज से शास्त्राध्ययन आरंभ किया. अनेक गाथाएँ और पाठ कंठस्थ किए. दीक्षा के डेढ मास उपरांत गुरु का स्वर्गवास हो गया.

मुनिश्री मोतीलाल जी महाराज की निरंतर सार-सँभाल के कारण जवाहरलाल जी धार्मिक क्षेत्र में सूर्य की तरह दीप्तिमान सिध्द हुए. मुनि मोतीलाल जी उच्चकोटि के तपस्वी साधु थे. उदयसागर जी महाराज जवाहरलाल जी की काव्यशक्ति, व्याख्यान कला और प्रतिभा से अपार संतुष्ट हुए. उन्होंने भीलों को निरर्थक हिंसावृत्ति से रोकने के अथक परिश्रम किए. महाराज जी की मुलाकात महाराष्ट्र के जुझारु योध्दा एवं स्वाधीनता संग्राम के सेनानी जो सेनापति नाम से ही जाने पहचाने गए उनसे हुई जिनका नाम पांडुरंग बापट था. सेनापति बडी श्रध्दा के साथ मुनि श्री का प्रवचन सुना करते थे. पूरा प्रवचन मराठी कविता में अनुवादित कर देते थे.

लोकमान्य तिलकजी से जवाहरलाल जी का संवाद हुआ. उन्होंने भी जवाहरलाल जी की प्रतिभा का बखान किया. महाराष्ट्र के दीर्घकालीन यात्रा के समय जवाहरलाल जी समाज के विविध नेताओं और कार्यकर्ताओं के संपर्क में आए थे. उन्होंने मिल के वस्त्रों को सर्वथा हेय समझ उनका त्याग कर दिया. खद्दर का प्रचार प्रसार किया. उनका कथन था कि साधु संत अपनी जिम्मेदारी को समझें तो अहिंसा का पालन हो सकता है. जवाहरलाल जी अस्पृश्यता के विरोधी रहे. उन्होंने अछुतोध्दार का बीडा उठाया. उन्होंने समझाया कि धर्मभावना का तकाजा है कि मनुष्य मात्र को बंधु समझा जाए. तथाकथित शुद्र तो हमारे समाज की नींव है. अंत्यजों के प्रति दुर्व्यवहार को वे धर्म का उल्लंघन मानते रहे. मनुष्यता का अपमान बताते रहे. यह भावना न केवल जाति को अपितु देश को दुर्बल बनाती है यह उनका विचार था. वे आत्मा के पालन की बात करते रहे. उनकी प्रशंसा में कहा गया-

यो जैनागमत्वविद् भव महा सन्तापहारी गिरा, नित्य पूरयते दयारसमलं नो मानवानां हृदि।

पीत्वा यस्य वचः सुधां किलजना मुंचंति दोषान् खिलान् , स श्रीयुक्त जवाहरो विजयतामाचार्य वर्यश्चिरम्।।

जवाहरलाल जी महाराज का कार्यकाल राष्ट्रीय आंदोलन से भरपूर रहा. देश के नेता तो क्या लगभग पूरा देश ही कारागार बन गया था. महाराज श्री के प्रवचन धार्मिकता से सुसंगत होते हुए भी राष्ट्रीयता के रंग में रंगे हुए थे. शुध्द खद्दर के वस्त्र, अहिंसा की उपासना , राष्ट्रीयभाव भरी ओजस्विनी वाणी का प्रभाव जन-जन पर जादू-सा था. सरकार भयभीत और जनता निर्भय थी. यह धर्माचार्य सरकार की आँखों में खटकता रहा. श्रावक चिंतित थे. महाराज श्री की गिरफ्तारी से भयाक्रांत थे. कुछ ने तो महाराज जी से अपनी बात को धर्म के क्षेत्र तक ही सीमित रखने की प्रार्थना की. इसपर महाराज जी की वाणी का सिंहनाद गरज उठा. " मैं अपना साधु धर्म भली भाँति समझता हूँ. मुझे अपने उत्तरदायित्व का भी पूरा भान है. मैं जानता हूँ कि धर्म क्या है ? मैं साधू हूँ. अधर्म के मार्ग पर नहीं जा सकता. किंतु पराधीनता पाप है. पराधीन व्यक्ति ठीक तरह से धर्म की आराधना नहीं कर सकता. मैं अपने व्याख्यान में प्रत्येक बात सोच-समझ कर तथा मर्यादा के भीतर रह कर कहता हूँ. इस पर यदि राजसत्ता हमें गिरफ्तार करती है तो हमें डरने की आवश्यकता क्या है ? कर्तव्य-पालन में डर कैसा ?......... यदि कर्तव्य पालन करते हुए जैन समाज का आचार्य गिरफ्तार होता है तो इसमें जैन समाज के लिए किसी प्रकार के अपमान की बात नहीं है. इसमें तो अत्याचारी का अत्याचार सबके सामने आ जाता है. "

महाराज श्री के प्रवचनों के प्रभाव से समाज व्यसनमुक्त हुआ. पुरानी अदावतों से छुटकारा पा लिया. आपस का बैर भाव मिटा. प्रेमभाव जागा. २९ अक्तुबर १९३६ को महाराज की राजकोट में गाँधी जी से मुलाकात हुई. महाराज की उपदेश शैली, उदार विचार एवं उच्च संयम परायणता से वे पूर्व परिचित थे. महाराज ने सामने दीवार पर टँगी घडी की ओर निर्देश करते हुए कहा- " देखिए, यह सामने घडी है. इसकी दोनों सुइयाँ चल रहीं हैं ,यह बात तो सभी जानते हैं, पर सुइयों को चलनाने वाली मशीनरी इसके भीतर है उसे कितने लोग जानते हैं ? असल चीज तो मशिनरी ही है. " गाँधी जी ने उपदेश सुनने आने की इच्छा प्रदर्शित की लेकिन जनता उन्हें सुनने का अवकाश ही कहाँ देती थी ? एक बार गाँधी सप्ताह के दरमियान सरदार पटेल महाराज श्री से मिले. उस समय अपने वक्तव्य में महाराज ने कहा था- " महात्मा गाँधी के मौखिक यशोगान मात्र से गाँधी-सप्ताह नहीं मनाया जा सकता परंतु महात्मा जी ने जिस खादी को अपनाकर देश को समृध्द बनाने का सुंदर उपाय खोज निकाला है और गरीबों के भरण-पोषण का द्वार खोल दिया है उसे अपनाने से ही सच्चा गाँधी सप्ताह मनाया जा सकता है. "

श्री. पट्टाभीसीतारमैया, डॉ.प्राणजीवन मेहता से महाराज श्री का संवाद हुआ. राजकोट के सत्याग्रह प्रसंग में उनकी शानदार भूमिका रही. प्रजा में असंतोष की आग धधक रही थी. सैंकडों प्रजा-सेवक कारावास में ठुँसे जा रहे थे. नाना प्रकार के कष्ट भुगत रहे थे. महाराज श्री ने उस समय शांतिपूर्ण और त्यागमय जीवन बिताने की प्रेरणा दी. जबतक सत्याग्रही भाई-बहन जेल-यातनाओं को झेल रहे थे तब तक पक्वान्न न खाने एवं ब्रह्मचर्य पालन करने का आग्रह देशवासियों से किया. उनकी समस्त जीवन साधना अहिंसक थी. उन्होंने अहिंसा की बारीकियों को, अहिंसा के तेज को, अहिंसा की अमोघता को न केवल समझा ही था, वरन् अपने प्रत्येक व्यवहार में उसका अनुसरण किया था. इस कारण उन्होंने अहिंसात्मक उपायोंद्वारा सत्याग्रह में योगदान करने की प्रेरणा दी. उनकी दृष्टि में जनसामान्य की सहानुभूति सत्याग्रही का सर्वोतम बल है. उनका कथन था " सत्याग्रह के बल की बराबरी किसी भी प्रकार का बल नहीं कर सकता. इस बल के सम्मुख मनुष्य की शक्ति तो क्या देव शक्ति भी हार मानती है... प्रह्लाद के जीवन का इतिहास भी सत्याग्रह का महत्वपूर्ण दृष्टांत है. भगवान महावीर ने सत्याग्रह का प्रयोग स्वयं अपने आप पर किया. इसी कारण वे चंड कौशिक के समान विषधर नाग के स्थान पर लोगों के लाख मना करने पर भी निर्भयता पूर्वक जा पहुँचे थे. आज राज्यभक्तियुक्त सविनय असहयोग-आंदोलन करना प्रजा का प्रमुख धर्म है. "

जवाहरलाल जी के चिंतन की कुछ कणिकाओं का यों परिचय करा दिया जा सकता है :

प्रार्थना :--- हे प्रभु ! मैं ऊर्ध्वगामी होने की संकल्पयात्रा का पथिक तेरे महाद्वार पर खडा हूँ. उन्नति के अंतिम और महान लक्ष्य की सिध्दि में प्रमाण करने की इच्छा मेरे मन में समाई हुई है. मुझे ऐसी शक्ति प्रदान कीजिए कि मैं अधोगामी न बन जाऊँ, मेरी अवनति न हो, प्रभु ! विश्व के प्रलोभन मुझे यत्किंचित भी आकर्षित न करें. हे प्रभु, अगर आप मेरे लिए कवच बन जाएँ तो मैं कितना भाग्यशाली कहलाऊँगा! मैं ने आपके दिव्य स्वरुप को जान कर अपने हृदय में स्थान दिया है. मैं अपने हृदय को आपका मंदिर जानने लग गया हूँ.

नामस्मरण:--- महापुरुषों के जीवन और जीवन-साधना में नाम स्मरण का स्थान एवं महत्व सदा से अत्युच्च रहा है. जब वे गृहस्थ जीवन की समस्याओं से हार-थक जाते हैं, जब उनका चित्त अशांत एवं व्यग्र बन जाता है उस समय ईश्वर का नाम ही उनके लिए शंति प्रदान करता है. भयंकर आपत्ति काल में भी भगवत्स्मरण से ही वे धैर्य को प्राप्त होते हैं. नामस्मरण ही उनका पथ-प्रदर्शन करता है. जिस समय मनुष्य सिध्दोडहं, शुध्दोडहं, अनन्त ज्ञानादि गुण समृध्दोडहम् ' के मर्म को जान कर भगवान में अर्थात् उसके परम तत्व में तन्मय भाव से नामस्मरण करने लगते हैं. तब उन्हें अपने अंतस में स्थित परम शक्ति का आभास होने लगता है यह आभास जैसे जैसे निर्मल बनते जाता है, वैसे वैसे परमानंद के अनुभव में वृध्दि होते जाती है. भगवत् स्मरण आत्म विश्वास को निमंत्रित करता है. नामस्मरण आत्मिक शक्ति का ऊर्ध्वारोहण करता है क्यों कि पूर्ण विकसित आत्म तत्व का ही नाम भगवान है.

शिक्षाः--- मनुष्य अनंत शाक्तियों का तेजस्वी पुंज है, लेकिन उसकी शक्ति बँधी हुई हैं. उस आवरण को हटा कर विद्यमान शक्ति को प्रकाशित करना ध्येय है. बहुत ही अल्प संख्या में माता-पिता शिक्षा के वास्तविक महत्व एवं मूल्यवत्ता को जानते-समझते हैं. माता-पिता शिक्षा को आजीविका में सहायता करने वाले अथवा धनोपार्जन का साधन मानते हैं, वही शिक्षा अपने बालकों को प्रदान करते हैं. इस वजह से वे शैक्षिक व्यवस्था में लोभ के शिकार हो जाते हैं. लोग नन्हें बालको के लिए कम वेतन वाले सामान्य स्तर के अध्यापकों की नियुक्ति करते हैं और उनसे प्राप्त शिक्षा के द्वारा बालकों के ऊर्जस्वल भविष्य की कामना करते हैं. यह बहुत बडी भूल है. नन्हें मुन्नों में शुभ संस्कारों का सिंचन करने के लिए अनुभव संपन्न अध्यापकों की आवश्यकता होती है.

तपः--- तप एक प्रकार की अग्नि है जिसमें समस्त अपवित्रता, कलिमल तथा समग्र कलुषितता भस्मीभूत हो जाती है. तपस्यारुपी अग्नि में तप्त हो कर आत्म तत्व कंचन की तरह नेजस्वी हो जाता है. तप को धर्म का आधार माना गया है. तपस्वी की वाणी प्रिय तथा पवित्र होती है. प्रिय, पथ्यकर एवं सत्य वाणी का प्रयोग करने वालों का तप सही अर्थों में तप माना जाता हैं. तपस्वी को असत्य या अप्रिय वाणी बोलने का अधिकार नहीं है. क्लेश युक्त, पीडाकारक तथा भयोत्पादक वाणी का प्रयोग वह न करें. तपस्वी की वाणी में अमृतोपम मधुरता होती है. भयग्रस्त प्राणी उसकी वाणी ग्रहण कर निर्भय बन जाता है. तपस्वी का अपनी जिह्वा पर सदा नियंत्रण होता है. उसकी वाणी शुध्द एवं निर्भय होती है.

अस्पृश्यताः---- मनुष्य मात्र को बंधुभाव से देख बंधु मानना धर्म-भावना का हार्द्र है. प्रत्येक मनुष्य हमारा बंधु-बांधव है. बंधु अर्थात् सहायक सहयोगी! इस प्रकार से शूद्र हमारे और हम उनके सहायक है. शूद्र समाज की नींव है. महल की आधारशिला तो उसकी नींव ही होती है. नींव की मजबुती पर ही महल का अस्तित्व टिका हुआ है. शूद्र अस्थिर-विचलित हो गया तो समाज का बुनियादी ढाँचा ही चरमरा कर टूट-बिखर जाएगा. संस्कृति में धूल में मिल जाएगी. यह नित्य स्मरण रखा जाएँ कि ये भी हिंदु समाज की लाडली संतान हैं. उनका धिक्कार नहीं किया जाना चाहिए ! उनका अपमान नहीं होना चाहिए. उनके प्रति कृतघ्नता व्यक्त नहीं की जानी चाहिए. उनके साथ स्नेहभरा आचरण-व्यवहार किया जाना चाहिए.

संकल्पः--- संकल्प में दुःख को दूर करने की सामर्थ्य है क्या ? जी हाँ, अवश्य है. संकल्प में अनंत शक्ति निवास करती है. संकल्पमात्र से दुःख दूर हो सकते हैं. नवीन दुःखों का प्रादुर्भाव टाला जा सकता है. अपनी संकल्प शक्ति के विकास का ही दूसरा नाम आध्यात्मिक विकास है. संकल्प का प्रभाव जड-सृष्टि पर भी अवश्यमेव पडता ही है. संकल्प अगर बल से संयुक्त हो गया तो कार्यसिध्दि में सरलता जागती है. विशिष्ट प्रकार की तत्परता का अंतर्भाव होता है. निर्मल और सच्चे अंतःकरणपूर्वक किए हुए संकल्प को स्वयंमेव प्रकृति अनायास ही सहायता करती है. मिथ्या अहंभाव का त्याग कर शुध्द हृदयपूर्वक ईश्वरत्व की शरण में जाने का संकल्प शुभ है.

धर्म :--- जिस प्रकार धर्म और सिध्दांत के लिए राज्य शासन को प्रजा द्वारा सहयोग करना आवश्यक है उसी प्रकार लौकिक नियम-व्यवहारों में यदि राज्य शासन की ओर से अन्याय हो तो राष्ट्र भक्ति युक्त असहयोग करना प्रजा का मुख्य धर्म है.

वह प्रजा नपुंसक है जो अहिंसा की आड ग्रहण कर अन्याय के विरुध्द सख्त कदम नहीं उठाती तथा अन्याय को चुपचाप सहन करती है.

अनुचित कानून को भय के कारण शिरोधार्य करना धर्म और संस्कृति का अपमान है. धर्मवीर अपकारक कानून को ही नहीं ठुकराता अपितु किसी भी विभाग द्वारा यदि ऐसा कानून बनाया जाता हो तो उसे भी प्रबलता से उखाड फेंकने की हिंमत रखता है.

' विरुध्द रज्जाइक्कमे ' के अनुसार राष्ट्र व्यवस्था का विरोध न करना धर्म का आदेश है किंतु यदि शासक अनीति, अनाचार और स्वार्थवश राज्य व्यवस्था को तहस-नहस करता हो, गुलामी की बेडियाँ पहनाता

हो तो उसके विरुध्द आंदोलन करना धर्म और संस्कृति का गौरव बढाना है. धर्म ऐसे पवित्र आंदोलन का विरोध नहीं करता है.

सच्चा अहिंसक एक चिंटी के भी अकारण प्राण हरण करने में थर्रा उठेगा किंतु वही व्यक्ति न्याय-नीति व धर्म रक्षा के लिए अनिवार्य रुप से संग्राम में कूद कर बेहिचक हजारों अत्याचारियों के मस्तक उतारने से भी नहीं डरेगा.

जिस अन्याय अत्याचार का प्रतिकार करने में तुम असमर्थ हो कम से कम तुम उसमें सहायक तो मत बनो.

अन्याय व अनीति का प्रतिकार न करना मानवता व राष्ट्र के लिए घोर कलंक है. सच्चा धर्मवीर अन्याय के विरुध्द अलख जगाता है. वह न तो स्वयं अन्याय करता हैओर न अपने सामने होने वाले अन्याय को देख सकता है. वह सदैव अन्याय के प्रतिकार के लिए कटिबध्द रहता है. अन्याय का प्रतिकार करने के लिए समाज, संस्कृति और देश के चरणों में वह अपने प्राणों को हँसते-हँसते बलिदान कर देता है.

अन्याय-अत्याचार के कारण हथकडी पहनना अपने कुल को कलंकित करना है. किंतु अन्याय-अत्याचार को दूर करने के लिए हथकडी-बेडी पहनना आभूषण के समान है व कुल एवं धर्म का गौरव बढाना है.

आचार्य जवाहर जी के इन क्रांतिकारी विचारों के कारण वे सदा ही राष्ट्रभक्तों में गौरव का विषय बने रहे. स्वयं गाँधी जी ने उनके बारे में दिनांक २९ अक्तुबर १९३६ को राजकोट में कहा था कि इस देश में दो जवाहर हैं - एक घडी की सुई की तरह बाहर हैं और दूसरे घडी की मशीन की तरह भीतर हैं. देश को दोनों की जरुरत है.

महाराज ने खद्दर प्रचार, मादक द्रव्य-निषेध, अस्पृश्यता निवारण, गो-रक्षा, कुरीति निवारण आदि विविध विषयों पर भी धार्मिक दृष्टिकोण से प्रभावशाली प्रवचन दिए. उनके विचार सर्वग्राही और सर्वस्पर्शी रहे. उनकी सांप्रदायिक चिंतन धारा विशालता की अविरोधिनी रही. १० जुलाई १९४३ को जवाहररुपी पवित्र आत्मा ने शरीर का त्याग कर स्वर्ग की और प्रयाण कर दिया. शास्त्र में कहा गया है -"

जह दीवो दीवसयं, पइप्पए जसो दीवो। दीवसमा आयरिया, दिव्वंति परं च दीवंति।।

अर्थात- आचार्य दीपक के समान हैं. जैसे दीप सैंकडों दीपकों को जलाता है और खुद भी प्रकाशित रहता है, ऐसे दीप के समान आचार्य स्वयं ज्ञानादि गुणों से दीप्त और उपदेश दान आदि से दूसरों को भी दीपाते हैं.

सुप्रसिध्द समाजसुधारक एवं राष्ट्रधर्मी जैन युवक संघ, राजकोट के मंत्री श्री जटाशंकर मणिकलाल मेहता जी ने आचार्य महाराज और महात्मा गाँधी जी की हृदयंगम भेंट का वर्णन किया है. महाराज जी के मन में गाँधी जी के प्रति और उनके सिध्दांतों के प्रति आदरभाव था. जवाहरलाल जी के पचास ग्रंथ रामायण, महाभारत, नारी, गृहस्थ, धर्मजीवन, सती चरित्र, प्रवचन, स्मारक सम्यकत्व पराक्रम खंड १ से ५, धर्म और धर्मनायक, रामवनगमन खंड २, अंजना, पांडव चरित्र खंड २, बीकानेर के व्याख्यान, शक्तिभद्र चरित्र, मोरबी के व्याख्यान, संवत्सरी, जामनगर के व्याख्यान, प्रार्थना प्रबोध, उदाहरण माला खंड ३, नारी जीवन, अनाथ भगवान खंड २, गृहस्थ धर्म खंड ३, सती राजमती, सती मदन रेखा, हरिश्चंद्र तारा, जवाहर ज्योति, जवाहर विचार सार, सुदर्शन चरित्र, सती वसुमति खंड २, भागवती सूत्र व्याखान ८ आदि ग्रंथ प्रसिध्द हैं.

२) मुनि श्री जिनविजय जी महाराज

राजस्थान की पुरातात्विक धरोहर के संरक्षक प्राच्यविद्या के अमूल्य ग्रंथों के संरक्षक तथा अध्येता मुनिवर जिनविजय जी का नाम भारतीय पुरातत्व विद्या के संशोधक विद्वानों के लिए गौरवास्पद है. भारतीय विद्या भवन के निदेशक, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के संचालक, ओरिएंटल सोसायटी जर्मनी के फेलो, हरिभद्र सूरि स्मारक तथा पुरातत्व संशोधक केंद्र चित्तौड के संस्थापक, भांडारकर रिसर्च इंस्टिस्टयूट पुणे के सदस्य, और इस प्रकार की अनेक अध्ययन-संशोधन शालाओं से मुनिवर संलग्न रहे. वे भारतीय साहित्यधारा को समृध्दि और सामर्थ्य अर्पण करनेवाली विविध भावधाराओं के साक्षेपी संवाहक थे. रुपाहेली गाँव में भिलवाडा जिले में आपका जन्म हुआ. परमार वंशीय क्षत्रिय कुलोत्पन्न ज्ञानसाधक मुनिवर ने गाँधी आंदोलन में अपनी सक्रिय भूमिका निभाई.

पंद्रहवें साल की उम्र में उन्होंने जैन धर्म में दीक्षा ग्रहण की. इक्कीसवें साल की उम्र में साधु वेष का त्याग किया. साधू जीवन चर्या के कार्यकाल में उन्होंने जल का शरीर से कदापि स्पर्श नहीं होने दिया. एक बार अपनाए वस्त्र को जीर्ण हो गल जाने तक जल से धो कर स्वच्छ करने का प्रयत्न नहीं किया. शरीर रक्षा हेतु केवल तीन वस्त्रों का आश्रय ग्रहण किया. कडाके की ठंड में भी कंबल का उपयोग नहीं किया. बिछौने के लिए खद्दर का ही उपयोग किया. केवल हस्तालिखित ग्रंथों का ही स्वाध्याय किया. छपे हुए ग्रंथ को अपने साथ कदापि आश्रय नहीं दिया. कभी किसी से पत्र-व्यवहार तक नहीं किया. सदा एक पोस्टकार्ड तक किसी के नाम नहीं लिखा. चातुर्मास का अपवाद कर सदा भूमिशयन किया. स्वावलंबन का पाठ आचरण में लाने की दिशा में अखंड प्रयत्नशील रहे. अपना सारा बोज हमेशा अपने ही कंधों पर लादे पद यात्रा की. मार्ग में सदा मौन व्रत का पालन किया. रास्ता चलते समय अगर गलती से भी किसी हरी वनस्पति को स्पर्श हो जाए तो जैन शास्त्र के अनुसार उपवास किया करते. साल में दो बार नियमित रुप में मस्तक के केशों का लुंचन करते थे. चातुर्मास का अपवाद मान अन्यत्र कहीं भी एक माह से अधिक काल तक उन्होंने वास्तव्य नहीं किया. खुद उन्होंने विधिपूर्वक स्याही का निर्माण किया था. सदा उसीका उपयोग करते. संस्कृत, पाली, राजस्थानी, हिंदी, गुजराती, मराठी के साथ अंग्रेजी, जर्मनी इन विदेशी भाषाओं में उन्हें गति प्राप्त थी. विद्याध्ययन की अपार जिज्ञासा भावना के कारण उन्होंने साधुचर्या का त्याग किया था.

मुनिवर का स्वभाव परिवर्तन प्रेमी था. उन्होंने अपने मन को सदा पूर्वग्रहमुक्त रखा. कोई स्थान, व्यक्ति, विचार, सिध्दांत, पथ, संप्रदाय, समुदाय या विशिष्ट कार्यशैली उनका पथ नहीं रोक सकी. अपने इस गतिशील स्वभाव धारा के कारण उन्होंने अपने अनेक प्रिय स्थानों का त्याग किया. अनेक विशिष्ट धर्म-पंथ-संप्रदाय के जाल को तोडा . अध्ययन क्रम में बाधक अनेक ज्ञानसंस्थाओं से संबंध विच्छेद कर लिया. कल का विचार नहीं किया. भविष्य के बारे में नहीं सोचा. हर बाधा-अडचनों को लाँघ कर मार्गस्थ होने वाली सरिता के समान वे प्रवाही और प्रवासी रहे. परिवर्तन को जीवनधर्म माना. प्रागतिकता को जीवन का लक्षण माना. सदा उन्मुक्ततापूर्वक रहे. परिवर्तनशील जीवन शैली का स्वागत किया.

स्थानकवासी साधु की पोशाक त्यज कर उन्होंने मूर्तिपूजक संप्रदाय का नया वेश परिधान किया. इसके मूल में मुख्यतः विद्याध्ययन की प्रेरणा थी. इस संप्रदाय की पध्दति के अनुसार पूर्वाश्रम का नाम बदल अपने जिनविजय इस नए नाम का अंगिकार किया. इस भेस में बारह सालों तक रहे. विभिन्न स्थानों के दर्शन किए. धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक, साहित्यिक विविध प्रवृत्तियों में रस लिया. मूर्तिपूजक साधु की भूमिका में होते समय उन्होंने अनेक नूतन विचार-प्रमेयों को प्रस्तुत किया. स्थानकवासी साधु जीवन में वैचारिक क्षितिज विस्तारित नहीं थे. नए साधु जीवन में वे वैचारिक क्षितिजों का विस्तार कर सके. इस काल में मनोमंथन जागा. वैचारिक आलोडन-विलोडन हुआ. जीवन तथा सत्य के विविध रुपों से साक्षात्कार हुआ.

उम्र के आठवें साल से ही मुनिवर के क्रांतदर्शी जीवनपट का परिचय मिलता है. स्थानीय उपाश्रय के एक यतिवर की मृत्यु की वेदना उनके हृदय में आरपार उतर गई. एक साधु की संगति में पदयात्रा का निर्णय कर उन्होंने गृहत्याग किया. साधु ने बालक की व्याकुल माता को बालक के ऊर्जस्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त किया. उज्जैन नगरी पहुँचे. क्षिप्रा नदी के लहराते प्रवाह में साधु वेष को विसर्जित कर दिया और मुनिवर ने स्वतंत्र विचरण तथा स्वाध्याय का निश्चय मन-ही-मन किया.

लोकमान्य तिलक जी से मुनिवर का विशेष स्नेह संबंध था. सन् १९२० में वे गाँधी छावनी में दाखिल हुए. राष्ट्रीय असहयोगिता के आंदोलन में शामिल हुए. आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाते हुए अपने साधु वेष को बाधा मानने के कारण गाँधी जी से विस्तृत चर्चा-विमर्श करने के पश्चात् पुनश्च साधु वेश का त्याग किया. अपने अनेक विद्वान एवं विचारक मित्रों से सलाह-मशविरा किया. अखबार के माध्यम से अपनी इस विशिष्ट भूमिका का मर्म बता वेषांतर का रहस्य उद्घाटित किया. अनेक स्वनामध्यन्य पत्रकारों से उनका स्नेहबंध था. नए मित्र जुडते ही जा रहे थे. उन्होंने अनेक विषयों की चर्चा करनेवाले विविध ग्रंथों की निर्मिति की. अपनी व्यापक संप्रदाय मुक्त जीवनधारा के कारण उन्हें ' सर्वेषां अविरोधेन् ' व्यापक मान्यता प्राप्त हुई. साधु वेष का त्याग कर मुनिवर जी ने खद्दर का वरण किया. मुंबई को प्रणाम कर गाँधी जी के साथ अहमदाबाद जा पहुँचे. सत्याग्रह आश्रम में निवास किया. गाँधी कुटी में बैठ अपने परिवर्तित जीवन-प्रवाह का आलेख प्रस्तुत किया. अपनी गतिशील जीवनशैली के कारण मुनिवर गाँधी रंग में रंग गए. लोकमान्य तिलक जी के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं संघर्ष धारा से प्रभावित मुनिवर १९२० से गाँधी आश्रम की तापस भूमि में रम गए. यहाँ नित्य ही नए-नए प्रयोगों की धूनी रमाई जाती थी. इस आश्रम ने उनके तपाचरण पर एक नया तेज अर्पित किया.

अपनी संशोधन वृत्ति की पूर्ति के लिए उन्होंने देश-विदेश की विस्तृत यात्रा की. नमक कानून तोडने के अभियान में उनकी दृष्टि और कृति विवेकसंमत थी. एक जुझारु दस्ते के वे सेनानी रहे. इस आंदोलन में सक्रिय होते हुए भी उन्होंने अपने प्रज्वलित ज्ञानदीप पर कालिख जमा नहीं होने दी थी. संशोधन के नित्य नए प्रयोग और अध्ययन के अधुनातन संदर्भ जुटाने में वे सक्रिय रहे. विद्वनमान्य ' सरस्वती ' पत्रिका में उनका लेखन नित्य प्रकाशित होता रहा था. भारत के मूर्धन्य संशोधक जगत् में उनका न केवल परिचय था अपितु दबदबा भी था. जैन ग्रंथों के संशोधन-अध्ययन के लिए उन्होंने गुजरात भर पदयात्रा की. हस्तलिखितों की संहिताएँ माथे पर उठाए घूमते रहे. गुजरात पुरातत्व मंदिर की स्थापना की. गाँधी जी द्वारा संस्थापित गुजरात विश्वविद्यालय के प्रथम निदेशक के रुप में सम्मानपूर्वक आसनस्थ हुए. इसी काल में पंडित सुखलाल जी से मुनिवर का करीबी संपर्क हुआ. देश भर के स्वनामधन्य पंडितों ने मुनि जिनविजय जी को भारतीय दर्शन शास्त्र के महापंडित के रुप में गौरवान्वित किया.

एक बार एक जर्मन पंडित ने भारतीय दर्शन शास्त्र के समर्पित अध्येता के बारे में गाँधी जी से जानना चाहा था. उस समय क्षण भर का विलंब लगाए बिना गाँधी जी ने जिनविजय जी का नाम लिया था. १९२८ में गाँधी जी की प्रेरणा से जिनविजय जी ने जर्मनी की दिशा में प्रयाण किया. जर्मनी में उन्होंने भारतीय दर्शन का अध्ययन अपने विशिष्ट ढंग से किया. बर्लिन में अध्ययन-संशोधन के लिए हिंदुस्तान हाऊस नामक संस्था की स्थापना की. इसी हिंदुस्तान हाऊस से सुभाष बाबू ने स्वतंत्र भारत की उद्घोषणा कर अंग्रेज सल्तनत की नींद उडा दी थी. दो वर्षों तक इस संस्था को अपनी सेवाएँ अर्पित करने के पश्चात् सन् १९३० में जिनविजय जी हिंदुस्तान लौटे थे.

मातृभूमि पर कदम रखते ही उन्होंने अपने आपको स्वाधीनता की लडाई में झोंक दिया था. जेल यात्रा की. कारावास से मुक्ति पा कर अपने पूर्वनियोजित अध्ययन-संशोधन में जुट गए. दुर्लभ ग्रंथों के प्रकाशन का कार्य हाथों में लिया. जैन ग्रंथमाला से संबध्द रहते हुए गुरुदेव रवींद्रनाथ टागोर के शांतिनिकेतन में साधनारत रहे. मुनिवर का प्राच्यविद्या का संशोधन और लगन देख दुनिया स्तिमित हो गई. १९५२ में जर्मनी के ओरिएंटल सोसाइटी ने उन्हें अपना मानद सदस्यत्व बहाल कर सम्मान किया. यह एक विरल सम्मान की घडी थी. निरंतर

ध्येयगीत गाने वाले मुनिवर आंदोलन में अग्रेसर दिखाई देते हैं. कारागार में अग्रक्रम से प्रविष्ट होते हैं. खादी विद्या का अनुसंधान करते रहते हैं. ज्ञान संवर्धन का प्रदीप दीप्तिमंत करते हैं. गाँधी प्रकाश में अपने जीवनरथ को हाँकते रहे हैं.

मुनिवर का जीवन यों भव्य और बहुआयामी रहा. शांतिनिकेतन के विद्याव्यासंगी वातावरण से हट कर मुनिवर के.एम्.मुंशी जी के साथ मुंबई आए. भारतीय विद्या भवन का कलश जगमगाने लगा. यहाँ वे महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन जी के साथ रहे. चर्चा की. नई-नई अध्ययन-योजनाओं को आकार मिला. तैंतिसवें भारतीय हिंदी सम्मेलन का उत्सव मेवाड उदयपुर में था. जिनविजय जी सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष के रुप में सम्मानित हुए. श्री के.एम्.मुंशी जी सम्मेलनाध्यक्ष थे. इस अधिवेशन में मुनिवर की भेंट दौलतसिंह ' अरविंद ' जी से हुई. श्री अरविंद जी इतिहास पुरातत्व विभाग के पंडित थे.' प्राग्वाट इतिहास ' उनका एकमात्र ग्रंथ उनकी विद्वत्ता का परिचय करा देने के लिए काफी हैं. मुनिवर के मन में सेवाड भूमि का आकर्षण था. मेवाड राष्ट्रभक्तों की बलिदानी पीढियों का संरक्षक प्रदेश रहा है. चित्तौड किले के उत्तरी दिशा में बसे चंदेरिया नामक गाँव में इस महान प्रज्ञावंत ने आश्रय ग्रहण किया. एक प्रतिभाशाली देशभक्त के लिए इससे बढिया और कौन सी शरणस्थली हो सकती है भला ? यहाँ निवास कर उन्होंने अपने नित्य नए अध्ययन विषयों को गतिमान बनाया.

अपनी जन्मभूमि रुपहेली में अपनी माता जी का स्मारक बनाने के लिए मुनिवर प्रयत्नशील रहे. यह स्मृतिस्थल गाँधी स्मृति मंदिर के रुप में स्थापन करने की दिशा में वे प्रयत्नशील रहे. उनके जीवन का एक आर्त गहरा भावबंध माँ रहा था. इसी माता को उन्होंने आगे चलकर मातृभूमि के रुप में पूजा और विश्वमाता की सेवा की. १९६१ में तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ.राजेंद्र प्रसाद जी ने उन्हें ' पद्मश्री ' अलंकरण से सम्मानित किया. १९७५ में आपात्कालीन परिस्थिति को विरोध करते हुए उन्होंने इस अलंकरण का त्याग किया. जून १९७७ को अपने उम्र के ८९ वें वर्ष में उन्होंने नश्वर काया का त्याग किया. उनकी अंतिम इच्छा के अनुसार उनके पार्थिव को चंदेरिया लाया गया. उन्हींके द्वारा स्थापित सर्वोदय आश्रम के निकट चंदेरिया के सर्वदेवायतन मंदिर के परिसर में और्ध्वदेहिक संस्कारों को पूरा किया गया. उनकी स्मृति मे स्थापित मूर्ति एवं आकर्षक छत्र आज भी उनकी स्मृति गाथा गाते हैं. गाँधी जी की छत्र छाया में त्यागी, देशभक्त, साधकों के साथ ज्ञान तपस्वी जिनविजय जी का स्थान विशिष्ट है.

३) पंडितवर्य श्री बेचरदास जी दोशी

सत्य की साधना-आराधना हेतु पुष्प शैय्या पर विराजमान न हो काँटों भरी राह अपनाने वाले, खड्गधार पर चलने वाले, ज्ञान प्राप्ति हेतु अभूतपर्व आत्मत्याग करने वाले, राष्ट्र के अभ्युदय के लिए जलावतन होने की सजा भुगतने वाले, भगवती शाखा, समाज पुरुष और राष्ट्र देवता के लिए तन-मन-धन न्यौछावर करने वाले थे पंडित बेचरदास जी दोशी. उनकी गणना इस देश के अग्रगण्य सरस्वती पुत्र,राष्ट्र सेवक एवं समाज सुधारकों में की जाती है. अभिव्यक्ति के हर संभव क्षेत्र पर उन्होंने अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की मुहर लगाई है. जैन संघ को अंधश्रध्दा के घोर तिमिर से जगाने वाले वर्तमान युग के सुप्रसिध्द पुरुष प्रवरों में एक बेचरदास जी रहे.

बचपन से ही उन्होंने दरिद्रता के दशावतारों से सामना किया. संकट-विपत्तियों को पुष्पहारों के समान सीने से चिपकाए रखा. जीवन भर प्रतिकुलता, अभाव और विषमता के साथ जुझते रहे. विषमय वातावरण से घिरे रहते हुए भी अखंड रुप से माता शारदा की सेवा की. समाज धर्म की उपासना को व्रतस्थ भाव से अस्खलित रखा. अखंड नए की खोज में लगे रहे. उन्होंने सत्यशोधन प्रक्रिया को कदापि मंद न पडने दिया. उनकी जीवन शैली को संक्षेप में ' दिने दिने नवं नवं ' कहा जा सकता है.

जैन साहित्य और इस भव्य देश के इतिहास के संदर्भ में भी वल्लभीपुर नाम विशिष्ट और महत्वपूर्ण है. इस नगरी में ही विक्रमी संवत १९४६ अर्थात् इसवी सन १८९० में मार्गशीर्ष अमावस्या के दिन बेचरदास जी का जन्म हुआ. लाधा भाई उनके दादा जी का नाम था. पिता जीवराज जी, माता आतम बाई. बिसा श्रीमाळी देरावासी जैन परंपरा में उनका जन्म हुआ. दस साल की उम्र में पितृ छत्र नष्ट हो गया. उदर निर्वाह का प्रश्न बिकट था. खाने को अन्न नहीं था लेकिन मृतक् भोज और उत्तर क्रिया के लिए कुछ भी नहीं था. माँ ने अपने हाथ का कंगन बेच कर सारी व्यवस्था पूरी की थी. बेचरदास जी इस हृदयद्रावक कथा को भला कैसे भूल पाते ? अपना सब कुछ माँ ने न्यौछावर कर दिया था. मजदूरी करनी पडी. चक्की पीसना, वर्तन माँजना, ऐसे सेवा कार्य करने पडे लेकिन भूख का प्रश्न मिट नहीं पाया था. माँ रात-दिन अपने बच्चों के पालन पोषण के लिए मेहनतरत रही. परिश्रमी माता को सहायता देने के लिए नन्हा बेचरदास सदा तैयार रहता. मजदूरी करते हुए न उन्हें कभी लाज आई और ना ही उन्होंने उन कामों को छोटा या हेय माना. खेत में परिश्रम किया. महिलाओं के करने योग्य सेवा कार्य करने में भी अपनी माँ का हाथ बँटाया.

ज्ञानार्जन के लिए उनका मन सदा बेचैन रहा. परिस्थिति का दबाव इतना भयंकर था कि मन मसोस कर रह जाना पडा. १९०२-१९०३ में शास्त्र विशारद जैनाचार्य विजयधर्मसूरी महाराज ने मांडळ में संस्कृति पाठशाला की स्थापना की. वे जैन विद्वानों को निर्मित-प्रशिक्षित करना चाहते थे. इस पाठशाला में अध्ययनार्थ वल्लभीपुर के ही श्री हर्षचंद्र भूरा भाई (श्री जयंतविजय जी) मांडळ की दिशा में जाना चाहते थे. बेचरदास उनके साथ हो लिए. आचार्य श्री छात्र को देख फूले न समाए. गुजरात के अर्थ प्रधान वातावरण में विद्योपासना को बल नहीं मिलेगा ऐसा विचार कर सूरीश्वर जी ने काशी की राह अपनाई. काशी में विद्या व्यासंग के लिए पर्याप्त अनुकूल और उत्साह भरा वातारण था. मांडळ के अपने पाँच-छह महिने के वास्तव्य काल में बेचरदास जी ने कौमुदी का स्वाध्याय किया. आचार्य महाराज जी के साथ काशी जाने की सिध्दता की. माँ अपने बालक को इतनी दूर भेजने के लिए तैयार नहीं थी. श्री हर्षचंद्र जी के साथ बेचरदास गोधरा से वापस लौट आए. वल्लभीपुर में ही सातवीं कक्षा तक की पढाई पूरी की.

मातृ इच्छा को आदर देते हुए बेचरदास वापस लौट आए लेकिन ज्ञान प्राप्ति की तृष्णा उन्हें बेचैन करती रही. उन्होंने पालिताणा जाने का तय किया. मुनि श्री सिध्दविजय जी महाराज के चरणों में बैठ कर नवतत्व आदि धार्मिक अध्ययन का संकल्प पूर्ण किया. पालिताणा के निवास काल में उन्होंने भोजनादि सुविधाओं के लिए कडे संघर्ष का मुकाबला करना पडा. माँ ने राह चलते हुए लड्डू दिए थे. वे समाप्त हो गए. भोजन की व्याधि तो रोज

की ही थी, उसका उपाय था ही कहाँ ? प्रभावना के समान उपक्रम द्वारा जो कुछ मिलता उसके साथ ही गुजारा करना पडता था. कई बार उपवास करना पडता. अंत में जामनगर के एक सज्जन श्री सौभाग्यचंद्र कपूरचंद्र जी ने मासिक दस रुपयों की व्यवस्था कर दी. इस आर्थिक सहायता के कारण मार्ग कुछ तो सुगम बना. पालिताणा में साल भर रुक कर वापस वल्लभीपुर आ गए. विद्याध्ययन के लिए उनके मन में काशी जाने की इच्छा बराबर उठती रही. माँ अनुमति नहीं दे रही थीं. आखिर मेहसाणा पाठशाला में जा बैठे और एक माह के भीतर भांडारकर की मार्गोपदेशिका का पहला ग्रंथ प्रकट हुआ.

इस अध्ययन के कारण बेचरदास जी की अध्ययनाकांक्षा अधिक उजली बनी. विद्या प्राप्ति के लिए उनकी छटपटाहट रुकी नहीं और एक दिन माता जी की अनुमति पाए बिना वे हर्षचंद्र के साथ काशी की दिशा में चल पडे. वह १९०६ साल था. आचार्य महाराज सजल जलद बन उमड-घुमड कर बरसने को तैयार थे और बेचरदास जी का मन प्यासी उन्मुख धरती की तरह उत्सुक-आतुर था. अभी छह माह का ही समय बीता था कि देवी-माँ के प्रकोप से वे व्यथित हुए. यह खबर पहुँचते ही माँ का हृदय द्रवित हुआ. बिना किसी को साथ लिए माँ काशी में आ पहुँची थी. मातृ स्नेह को क्या कभी किसी ने बुध्दि के गज से नापा है भला ? माँ काशी में बालक के साथ दो वर्षों तक टिकी रहीं. कुछ समय तक वल्लभीपुर में रुक कर बेचरदास जी ने पुनश्च काशी की राह अपनाई. विद्याध्ययन का श्रीगणेश किया. पंडित हरगोविंद दास विक्रम जी सेठ के सहयोग से यशोविजय जैन ग्रंथमाला के संपादन कार्य में लग गए. इस ग्रंथमाला के द्वारा प्रकाशित ग्रंथों का दर्जा विद्वन्मान्य होने के कारण कलकत्ता संस्कृत महाविद्यालय की ' तीर्थ ' परीक्षा के लिए पाठ्यक्रम के रुप में इन ग्रंथों का अंतर्भाव किया गया. मुंबई एज्युकेशन बोर्डद्वारा ली गई धार्मिक परीक्षा में भी बेचरदास जी उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण हुए. पचहत्तर रुपयों का नकद पुरस्कार पाया.

एक प्रत्युत्पन्न मति छात्र के रुप में बेचरदास जी का परिचय सबको हुआ. इस काल में उन्होंने संस्कृत भाषा में उत्तम काव्य रचना की है. पंडित जी की इस विलक्षण बुध्दिमत्ता का सम्मान करते हुए महाराज ने उन्हें प्रतिमाह दस रुपए छात्रवृत्ति प्रदान करने की इच्छा दर्शाई तो ' यह पाठशाला मेरी तमाम आवश्यकताओं की पूर्ति करती है. इसलिए मुझे अलग से किसी छात्रवृत्ति की आवश्यकता नहीं ' ऐसा कह कर विनम्रतापूर्वक उन्होंने छात्रवृत्ति को नकार दिया. पंडित जी श्रमण संस्कृति के अध्ययन में पारंगत बने यह महाराज की इच्छा थी. प्राकृत भाषा का ज्ञान संपादित किया. यह उन्हें अधिक सुगम लगा. अचानक उपलब्ध होने वाली किसी सिध्दि के समान उन्होंने प्राकृत भाषा को आत्मसात कर लिया.

बौध्द धर्म के लिए पालि भाषा-ज्ञान की आवश्यकता थी. इस ज्ञान-प्राप्ति के लिए महाराज ने श्री हरगोविंददास के साथ बेचरदास को सीलोन भेजा. आठ माह के काल में विद्या प्राप्ति का अपना इप्सित कार्य संपन्न कर दोनों ने काशी की राह अपनाई. प्राचीन जैन ग्रंथों के संपादन कार्य में तल्लीन हुए. उस समय तक सामाजिक, सांप्रदायिक, धार्मिक शिक्षा संस्थाओं में राष्ट्रीयता की भावना का प्रवेश नहीं हुआ था फिर भी अपने काशी के वास्तव्य काल में ही बेचरदास जी को वंगभंग आंदोलन का स्पर्श हो गया था. उसके प्रभाव स्वरुप उन्होंने देशी वस्त्र और देशी चीनी का इस्तेमाल करने का निर्धार किया था. १९१५-१९१६ साल में गाँधी जी ने स्वदेशी आंदोलन का बिगुल बजाया था. पंडित जी उस समय से ही व्रतों के प्रति आग्रही रहे. उनके अंत:करण में देशप्रेम की मशाल प्रदीप्त हुई. उनका व्युत्पन्न मस्तक देशभक्ति की भावना से प्रफुल्लित हुआ.

आरंभिक काल में बेचरदास जी के मन में जैन साहित्य एवं दर्शन के संबंध में एकांतिक आग्रह बसा था. उन्होंने अन्य धर्मीय ग्रंथों को स्पर्श तक नहीं किया था लेकिन प्राकृत और अर्धमागधी भाषाओं के अध्ययन-चिंतन ने उनके अध्ययन विचार को विस्तृत किया. प्राचीन ग्रंथों के आलोडन-विलोडन के साथ उन्होंने अन्यान्य तत्व ग्रंथों का भी अध्ययन किया. उनके चिंतन को पृथगात्म आशय प्राप्त हुआ. उनकी अभिव्यक्ति में सर्व समावेशकता का इंद्रधनुष सजा. अंधश्रध्दा का अंधकार हटा. मन व्यापक-विस्तीर्ण हुआ. उन्होंने आगम ग्रंथों का स्वाध्याय किया. आगमों का चिंतन किया. प्राकृत भाषा के समृध्द चिंतन ने उनके मन को प्रगल्भ बना दिया था.

उनका शास्त्र चिंतन सत्य शोध की दिशा में अग्रेसर हुआ. यह उनके जीवन का क्रांतदर्शी काल माना जाना चाहिए. इसी काल में उनके मन-मस्तिष्क में क्रांति का बिगुल बजा. संस्कृत के मूल ग्रंथों का अनुवाद कर उन्होंने जनसुलभ करने को क्रांति का परचम फहराना माना. सर्वजनसुगम होने पर ही जैन संस्कृति का विकास होगा यह उनकी मनोधारणा हुई थी. यह इच्छा काशी में बैठ पूर्ण करना संभव नहीं होगा यह जान कर वे अहमदाबाद की ओर चल पडे. सेठ पूंजाभाई हीराचंदभाई द्वारा स्थापित जिनागम संस्था से जुड गए. यह १९१४ साल था. जिनागम संस्था का उद्देश्य स्पष्ट था. आगम का प्रामाणिक प्रमाणभूत अनुवाद उनका मिशन था. उस समय शास्त्र वचनों के अनुवाद और अनुवादकर्ता को संकटों से मुकाबला करना पडता, जन प्रक्षोभ का बलि बनना पडता इतना ही नहीं लेकिन सुधारक वृत्ति के जनों को और सुधारक कहलवाने वाले सुधारक साधु-संत भी इस विरोध की आग को पी-पचा नहीं सकते थे. इसी काल में महावीर जयंती के अवसर पर अहमदाबाद की एक जाहीर सभा में बेचरदास जी ने आगमों के अनुवाद का समर्थन करने वाला दाहक वक्तव्य सुनाया. उनके विरोध में एक बवंडर खडा हो गया. उस समय के विरोध का स्वरुप मात्र शाब्दिक विरोध तक ही सीमित-मर्यादित स्वरुप का नहीं था. प्रत्यक्ष हाथापाई की संभावना थी. अपने मिशन से न डिगते हुए अकंप भाव से बेचरदास जी ने अपना कार्य जारी रखा. मुंबई में डटे रह उन्होंने अपने नियोजित कार्य और कार्यक्रम में यत्किंचित् भी परिवर्तन नहीं होने दिया. इसी काल में १९१९ साल में मुंबई में मांगरोल जैन सभा की ओर से एक वक्तृत्व सभा का आयोजन किया गया था. उनके सचिव के विशेष आग्रह के कारण बेचरदास जी ने श्री मोतीचंद गिरधरलाल कापडिया की अध्यक्षता में अपना बहुचर्चित विद्रोही भाषण दिया. व्याख्यान का विषय था ' जैन साहित्य में उत्पन्न विकारों के परिणाम स्वरुप होने वाला नुकसान ' इस व्याख्यान ने जैन संघ के मधुमख्खियों के छत्ते में मानो पलिता लगा दिया. विरोध उफना. विचारक अंतर्मुख हुए. चिंतन की नई दिशाएँ प्रकाशमान हुईं. बेचरदास जी का और उनके मुक्त विचारों का स्वागत भी हुआ. पंडित जी के जीवन का एक क्रांतदर्शी अध्याय उनके इस व्याख्यान ने लिखा. अहमदाबाद के संघ ने बेचरदास जी को संघ से निष्कासित कर दिया. पंडित जी ने जीवन और व्यवहार के नग्न सत्य को बेबाक शैली में अभिव्यक्ति प्रदान की थी. लोक निंदा और जन प्रशंसा के दो ध्रुवों पर एक साथ कदम रखने वालों को भी क्या कभी सत्य का उच्चारण करना आया है ? पंडित जी अपनी राय पर कायम रहे.

इसी प्रकार उनका बहुचर्चित व्याख्यान ' देवद्रव्य ' शीर्षक का था. परंपरावादी रुढिप्रिय जनों के मन में क्षोभ का सागर उफन उठा. इस विषय की काफी चर्चा की गई. विरोधी खेमे के नेता थे विजयनेमसूरी जी ! बेचरदास जी संघ की बिनशर्त माफी माँगे अन्यथा उन्हें संघ से च्युत किया जाएँ यह मुद्दा ले कर उन्होंने आकाश-पाताल एक कर दिया. विजयनेमसुरी जी ने बेचरदास जी को समझाने-मनाने की जिम्मेदारी संघवी जी को सौंपी. इतना ही नहीं अपने काम में असफल रहने पर संघवी जी को भी संघ से पदच्युत करने की बात विजयनेमसुरी जी ने कही थी. इस घटना के संदर्भ में अपनी साफ प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए श्री संघवी जी ने कहा था कि बेचरदास जी के वक्तव्य तथा लेखन में अगर त्रुटी होगी तो उसके चार गुना अधिक एकांगिता एवं त्रुटी स्वयं रुढीप्रिय साधुजन एवं उनका अनुसरण करने वाले श्रावकों में विद्यमान थी. उनमें जडत्व था. असहिष्णु भाव था. संघवी जी इस काम से सौ योजन दूर ही रहे. अपने क्रांतिकारी लेखन तथा वक्तव्य के कारण बेचरदास जी ने इस प्रकार से विरोध मोल लिया था.

घाटकोपर में अन्य मित्रों के साथ बेचरदास जी भी थे. बेचरदास जी के माथे पर विरोध-बहिष्कृति के तूफान के मँडराने का वह काल था.अनेक डरपोक सलाहकारों ने उन्हें माफी माँगने की राय दी लेकिन वे पहाड के समान अकंप रहे. सुधारक और कुछ अमीर लोग भी उनके साथ थे. किसी का भी किसी भी प्रकार से विचार न करते हुए उन्होंने संघ की माफी माँगने के प्रस्ताव की धज्जियाँ उडा दी. निडरतापूर्वक बहिष्कार का मुकाबला किया. अपने सत्य को कायम रखा, अकंप रहे.

अपने पुणे के अध्ययन-अध्यापन काल में श्री संघवी जी ने डॉ. रामकृष्ण जी भांडारकर की मुलाकात ली. इस मुलाकात के दरमियान उन्हें भेंट देने के लिए उन्होंने पंडित बेचरदास जी दोशी के ' भगवती सूत्र खंड

प्रथम ' ग्रंथ को चुना था. पडित सुखलाल जी संघवी ने अपने आत्मचरित्र में पंडित जी के वक्तव्य पर विस्तारपूर्वक लिखा है.

मुनि जिनविजय जी के साथ बेचरदास जी गाँधी जी के अहमदाबाद आश्रम गए थे. इसके पूर्व ही पंडित जी ने गाँधी जी का अमृतमय स्पर्श पाया था. एक प्रकांड पंडित इस प्रकार से निर्भय, उन्मुक्त और सत्य के समर्थक हैं यह जान कर गाँधी जी ने उन्हें मुक्त रुप से आशीर्वाद दिया. अपने सत्य-निर्णय पर दृढ रहने की अनेक अर्थों में प्रेरणा दी. इसके बाद वे दीर्घकाल तक गाँधी जी के सान्निध्य में रहे. अधिक भावपूर्ण परिचय स्थापित हुआ. १९२१-१९२२ साल में वे गाँधी जी के गुजरात पुरातत्व मंदिर से संलग्न हुए. वहाँ पंडित प्रवर सुखलाल जी संघवी के सहयोग से ' सन्मति तर्क ' के संपादन का महादुष्कर कार्य सिध्द किया. प्राचीन प्रमाणभूत ग्रंथों के संपादन कार्य में इस संपादन की विशिष्ट भूमिका मानी जाती है. इस संपादन से गाँधी जी अतीव प्रसन्न हुए थे. इस सूक्ष्म कार्य की सिध्दि करने के प्रयत्न में पंडित जी को अपने बाएँ नेत्र की ज्योति को हमेशा-हमेशा के लिए खो देना पडा. नेत्र ज्योति का प्रभाव क्षीण हुआ. इसके बाद दांडी यात्रा का ऐतिहासिक अभियान आरंभ हुआ. इस रणदुंदुभी का नाद सुन कर भी घर में बैठे रहना तो संभव ही नहीं था न ? पंडित बेचरदास जी भी मोहन-मुरली की धुन सुन कर प्रभावित हुए थे. ' नवजीवन ' हस्तलिखित के संपादक बने. नौ महिने तक वीसापुर कारावास में रहे.

कारावास से मुक्ति पाने के बाद पंडित जी के अडचन भरे प्रवास की शुरुआत हुई. ब्रिटिश हुकूमत में दाखिल न होने का आदेश निकला. यह आदेश ठेठ १९३३-१९३६ तक कायम रहा. जब कांग्रेस ने प्रांतों में सत्ताग्रहण कर लिया था तब चरितार्थ के लिए उन्हें अपार परिश्रम करने पडे. यह दुःखभरा समय था. जलती राहों पर चलना था. उनकी पत्नी अजवाळी बेन (हिंदी में अनुवाद उज्ज्वला बेन किया जा सकता है) ने सजल श्यामल मेघ बन कर उन्हें स्नेह सिंचित रखा. उनके बेटे प्रबोध और शिरीष तथा कन्या ललिता और लावण्यवती को भला कौन भूल सकता है ?

१९३८ के लगभग अहमदाबाद में एल्.डी. कॉलेज की स्थापना की गई. गुजरात के स्वनामधन्य विद्वान डॉ.आनंदशंकर जी ध्रुव की विशेष सिफारिश के कारण कॉलेज में अर्धमागधी के प्राध्यापक के रुप में उनकी नियुक्ति की गई. १९४० में उन्होंने मुंबई विश्वविद्यालय की ठक्कर वसनजी माधवजी व्याख्यानमाला में व्याख्यान दिए थे. उनके व्याख्यानों का विषय था ' गुजराती भाषा की उत्क्रांति ' इन व्याख्यानों के कारण उनके पांडित्य की पगडी में मोरपुच्छ सज उठे. लगातार छह दशकों तक पंडित जी ने जैन साहित्य की अपार सेवा की. इस कार्य से अनेक ग्रंथरत्न प्रकट हुए. प्राचीन गुजराती, अपभ्रंश और प्राकृत-अर्धमागधी इन भाषाओं पर पंडित जी का असाधारण अधिकार था. इस क्षेत्र में न केवल देश भर में लेकिन विदेशों में भी अनेक विद्वान थे. उनके अध्ययन के माध्यम से बेचरदास जी ने जैन साहित्य के सत्य दर्शन की स्थापना की. समाज को ज्ञान पथ पर अग्रेसर किया. यह एक अद्भुत बात थी. पांडित्य और सत्यनिष्ठा के क्रांतिकारी मणि-कांचन सुयोग के कारण ही वे गाँधी जी का आशीर्वाद प्राप्त कर सके.

पंडित जी की सारस्वत प्रज्ञा का परिचय उनके द्वारा लिखित, संपादित, अनूदित निम्नलिखित ग्रंथों के माध्यम से होता है. पंडित सुखलाल संघवी के सहयोग से संपादित जिन ग्रंथों का प्रकाशन गुजरात विद्यापीठ-गुजरात पुरातत्व मंदिर ने किया, उस ग्रंथ - संपदा में सन्मति तर्क (पाँच खंड), सन्मति तर्क (मूल अनुवाद और विवेचन के साथ) और ब्रह्मचर्य विषयक जैन धर्म का दृष्टिकोण आदि ग्रंथों का प्रमुखता से विचार किया जा सकता है. श्री हरगोविंददास जी की सहायता से श्री यशोविजय जैन ग्रंथमाला के अंतर्गत संपादित संस्कृत-प्राकृत ग्रंथों की संख्या बहुत है. इनमें प्रमुखतः रत्नाकरावतारिका, शांतिनाथ महाकाव्य, नेमिनाथ महाकाव्य, विजय-प्रशस्ति, पांडव चरित्र, निर्भय भीम व्यायोग, लघु खंडदर्शन समुच्चय, अनेकांत जयपताका (प्रभम खंड), स्याद्वाद मंजरी, अभिधान चिंतामणि कोश, पार्श्वनाथ चरित्र, मल्लिनाथ चरित्र, जगद्गुरु काव्य, शब्द रत्नाकर कोश, आवश्यक निर्युक्ति (प्राकृत) इन ग्रंथों का समावेश किया जा सकता है. पंडित जी द्वारा स्वतंत्र रुप से लिखित

ग्रंथों में प्राकृत मार्गोपदेशिक, हेमचंद्राचार्य के समान मूल रचनाओं के साथ धम्मपद और जैनदर्शन इन अनूदित ग्रंथों की महिमा बडी है. बेचरदास जी द्वारा संपादित-अनूदित ग्रंथों में भगवती सूत्र (खंड दो) प्राकृत व्याकरण, महावीर वाणी इन ग्रंथों का मुख्यतः अंतर्भाव किया जा सकता है.

संस्कृत भाषा का पांडित्य और क्रांतदर्शी सत्यनिष्ठा इन गुणों के कारण तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन् जी ने प्रमाणपत्र प्रदान कर विशेष रुप से उन्हें गौरवान्वित किया. विविध संस्था, संगठन तथा शैक्षिक संकुलों ने समय-समय पर उन्हें सम्मनित किया. उन्होंने सात स्वर्ण पदक प्राप्त किए. महाविद्यालय से अवकाश ग्रहण कर लेने के उपरांत भी उन्होंने अपनी सेवाएँ अर्पित कीं. पी-एच्.डी के अनेक छात्रों को मार्गदर्शन किया. ११ अक्तुबर १९८२ को अपनी उम्र के ९३ वें साल में वे अनंत में विलीन हो गए. जैन साहित्य तथा जैन संस्कृति के रक्षण तथा संवर्धन में वे आजीवन सक्रिय रहे. देश सेवा की. कारावास झेला. अपनी ज्ञान निष्ठा को अखंड रखा. वे सत्यवीर क्रियाशील पंडित थे.

४) श्रीमद् राजचंद्र जी

विलायत का अपना अध्ययन पूरा कर सन् १८९१ में गाँधी जी मातृभूमि लौटे थे. माता जी का निधन हो गया था. इस खबर को सुन उनकी चित्तवृत्ति व्याकुल हो गई. विलायत में रहते हुए उनका डॉ. प्राणजीवनदास जी से संपर्क बढा हुआ था. स्नेहवर्ध्दन हुआ. उनके बडे भाई पोपटलाल थे. पोपटलाल जी के जामाता थे रायचंदभाई. गाँधी जी का उनसे परिचय हुआ- बढ़ा. मानो मातृवियोग की क्षतिपूर्ति के लिए ही यह संपर्क था. उनके संबंध में अपने आत्मकथन में गाँधी जी ने लिखा है कि उनसे मिलने के पश्चात् वे अनेक धर्माचार्यों से मिले, अनेक सत्पुरुषों से भेंट करने के प्रसंग आए लेकिन रायचंदभाई जी के प्रभाव को कोई क्षीण नहीं कर सका. उनके अनेक वचन गाँधी जी के हृदय को स्पर्श कर गए. उनकी बुध्दिमत्ता एवं प्रामाणिकता के संदर्भ में गाँधी जी के मन में अपरंपार आदर भाव था. अनेकों बार आध्यात्मिक जागरण के प्रसंग में उन्होंने रायचंद भाई जी का मार्गदर्शन पाया.

रायचंदभाई गाँधी जी से उम्र में दो साल बडे थे. दोंनो में समानता का अंतःसूत्र अर्थात् धर्म या अध्यात्म था. अनेक विषयों में विविधता होते हुए भी वे दोनों इस विषय में समान और समांतर रहे थे. सौराष्ट्र के बावणिया नामक गाँव में ९ अक्तुबर १८६७ को उनका जन्म हुआ. बचपन में वे लक्ष्मीनंदन नाम से परिचित थे. चौथे साल की उम्र में उन्हें रायचंदभाई नाम से पुकारा गया. बचपन से ही माँ सरस्वती के आशीर्वादों से वे कवित्व शक्ति से संपन्न थे. इसी काल में अखबारों के माध्यम से उनका निबंध लेखन प्रकाशित हुआ. ' राजचंद्र ' लेखकीय नाम से वह लेखन प्रकाश में आया है.

बचपन से ही असामान्य स्मरण शक्ति ने उनका वरण किया. कवित्व एवं शैलीसंपन्न वक्तृत्व कला से वे मंडित थे. उनके दादा जी कृष्ण भक्त थे. इस वजह से बचपन से ही उन्हें वैष्णव भक्ति का रंग लग गया था. माता देवबाई जैन संस्कारों में दीक्षित थीं. राजचंद्र जी ने जैन साहित्य, संस्कृति, इतिहास, दर्शन का स्वाध्याय किया. श्मशान में एक शव का अग्नि संस्कार उन्होंने देखा और उनकी विराग भावना अधिक तीव्र हो गई. उनके चित्ताकाश में पूर्वजन्म का कोई संस्कार उदित हुआ. उन्हें शतावधानी के रुप में मान्यता प्राप्त थी. सोलहवें साल में वे अष्टावधानी तो थे ही. सन् १८८७ में मुंबई में उनका शतावधान का जाहीर प्रयोग जारी था. उस सभा में मुंबई हाईकोर्ट के तत्कालीन न्यायाधीश चार्ल्स सार्जंट भी उपस्थित थे. उन्होंने राजचंद्र जी के योरुप दौरे की योजना तैयार करना चाहा लेकिन राजचंद्र जी ने विनम्रता पूर्वक इस प्रस्ताव को नामंजूर कर दिया. गाँधी जी राजचंद्र भाई जी के शतावधानी रुप की तुलना में उनकी आंतरिक प्रतिभा से प्रभावित हुए. इस प्रभाव का रहस्य राजचंद्र जी के बुध्दि कौशल्य में न हो कर उनके विशुध्द चारित्र्य, समदृष्टि और आधात्मिक पराकाष्ठा तक पहुँचे हुए व्यक्तित्व में था.

राजचंद्र जी जवाहरों के व्यापारी थे. अध्यात्म विचार और गृहस्थी की जिम्मेदारियों को उन्होंने समान रुप से निभाया था. उनके आचरण की तुलना विदेही राजा जनक से निश्चित ही की जा सकती है. व्यापार की धमाचौकडी में भी उनकी अंतःसाधना की ज्योति अखंड अकंप थी. उनकी व्यावहारिक उदारता का परिचय अनेक बार मिलता था. अरब से आने वाले व्यापारी जन उनमें ' खुदाई नूर ' का दीदार पाते. त्याग की परमोच्चावस्था को स्पर्श करने वाले इस व्यापारी साधक ने निरिच्छ भाव साधना का जागरण किया था. धोती, कुर्ता, माथे पर पगडी उनकी सादगीभरी पोशाक थी. भोजन के विषय में वे रसशून्य दशा तक पहुँच चुके थे. उनकी चाल धीर गंभीर थी. वे अखंड ध्यानमग्न अवस्था में रहा करते थे. उनके गंभीर स्वभाव पर उनके मोहक स्मित साधक चेहरे की सुंदर मुहर थी. कंठ में मोहक स्वर विलास था. उनका लेखन और अक्षर सुंदर थे. एक बार लिखने बैठे कि बैठे. उनके लेखन में कहीं काटछाट या दुबारा लिखने का प्रयत्न नहीं दिखाई देता है. यह

उनकी स्थिर-बुध्दि का परिचायक तत्व माना जा सकता है. उनकी वाणी सत्य संदर्भित थी. उनकी वृत्ति समतोल, गौरवास्पद और गहन-गहरी थी.

राजचंद्र जी गृहस्थ थे. उनकी गृहस्थी वैराग्य से अभिमंत्रित थी. करोडों रुपयों का व्यवहार करने के पश्चात् भी वे अखंड भाव समाधि में रहा करते थे. हीरे-मोती का व्यापार करते. व्यापार एवं वाणिज्य विषयक प्रश्नों को हल करते, समस्याओं की गाँठ सुलझाते फिर भी इस विषय में उन्हें रस नहीं था. वे तो आत्मदर्शन की प्यास के कारण हरि दर्शन की प्रक्रिया में रमे हुए थे. ईश्वर चिंतन उनका परम पुरुषार्थ था. उनकी व्यापारी पेढी पर उनकी डायरी के साथ धर्म ग्रंथों की भीड कायम रही. व्यापार से थोडा भी समय मिलने पर वे धर्म ग्रंथों के स्वाध्याय में संलग्न हो जाते. धर्म रहस्य में रत उनकी अंतःसाधना विलक्षण प्रत्ययकारी थी. वे व्यापार करने वाले व्रती साधक और गहन ज्ञानोपासक थे. वे सदा अतंद्रावस्था में रहा करते थे. गाँधी जी के साथ उनका किसी भी प्रकार से न तो स्वार्थाधारित संबंध था ना व्यापारी संवाद था, फिर भी उनके अंतःस्थ संगी. साथियों में गाँधी जी का अंतर्भाव किया जा सकता है. राजचंद्र जी की धर्म चर्चा में सभी जनों को समान रुप से रसानुभूति हुआ करती थी. उनके तुलनात्मक दृष्टिकोण से वे प्रभावित थे. उनके मन में सभी धर्म-व्यवस्थाओं के अंतःकरण का सार समाया हुआ था. सर्वधर्म समभाव में उनका सहज विश्वास था. उन्होंने वेद, उपनिषद, गीता का स्वाध्याय किया था. इस्लाम और अन्यान्य धर्म ग्रंथों का अध्ययन किया था. इस कारण उनकी धर्म वाणी सर्वस्पर्शी और सर्व समावेशक बनी. उनके कुछ वचन यों हैं------

जहाँ अहंकार है,वहाँ ईश्वरी तत्व नहीं होता है।

सुख अंतःकरण का विषय है, उसे बाहर कैसे पाओगे ?

दुनिया पर कब्जा करने के लिए मन पर कब्जा जरुरी है।

जिस दिन शुभ कार्य संपन्न हुआ उसे महत्वपूर्ण मानो।

एक अज्ञानी की करोडों बातें होती हैं, करोडो ज्ञानियों की एक ही बात होगी !

देह धारण करने पर भी संपूर्ण वीतरागभाव संभव है।

उदर निर्वाह के लिए कोई भी काम किया जा सकता है, अन्याय पूर्वक धन नहीं कमाना चाहिए।

भक्ति धर्म गृहस्थ जीवन के पाप कर्मों का क्षालन करता है।

समय मौल्यवान होने के कारण उसका सदुपयोग होना चाहिए।

जीवन लघु और जंजाल व्यापक है, जंजाल को सीमित करना जरुरी है।

दिन भर की गलतियों पर रात में हँसा जा सकता है, लेकिन आगे न हँसने की चिंता करनी चाहिए।

धर्म अपने आपको पहचानने की प्रक्रिया है।

हिंसा का सबक कोई धर्म या धर्मोपदेशक नहीं पढाता।

राजचंद्र जी से गाँधी जी की भेंट-मुलाकात गाँधी अध्यात्म अंतर्यात्रा का भव्य तीर्थ बना. दक्षिण आफ्रिका के आंदोलन काल में उनका राजचंद्र जी से व्यापक मात्रा में पत्र व्यवहार हुआ. इस पत्र संवाद ने गाँधी दृष्टि को विकसित किया. गाँधी अध्यात्म-पथ पर रौशनी फैली. उनका अंतर्मन राजचंद्र जी से अतीव प्रभावित था. विलायत से वापस आने पर लगातार दो सालों तक उनका नित्य मिलन हुआ. उनकी दृष्टि में राजचंद्र जी भारत के तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ तत्व चिंतक थे. राजचंद्र जी का मन संकुचित धर्म भावना से मुक्त होने के कारण विश्वव्यापी था. राजचंद्र जी के संबंध में विपुल मात्रा में ग्रंथ लेखन करने वाले श्री नेमचंद जी गाला लिखते हैं कि गाँधी-राजचंद्र पत्रों की संख्या दो सौ से अधिक हैं, लेकिन इस पत्र-व्यवहार का कहीं भी कोई सुविहित अंकन नहीं पाया जाता. ज्ञानयोगी राजचंद्र जी का कथन था कि चाहे कोई भी धर्म-मत-पंथ-संप्रदाय क्यों न हो, उसकी दृष्टि सत्तत्व की खोज करना ही है. ज्ञान श्रेष्ठ होने के कारण प्रतीति करने योग्य है. अनुभवरुप ज्ञान की ही सदैव पूजा होनी चाहिए. सबके साथ भक्तिभाव पूर्वक वर्तन-व्यवहार होना चाहिए.

गाँधी जी ने एक पत्र के माध्यम से राजचंद्र जी को सत्ताईस प्रश्न तथा आठ उप प्रश्न पूछे हैं लेकिन न थकते हुए और बिना संक्षेप किए बिना राजचंद्र जी ने पत्रों का सविस्तार उत्तर दिया है. अपने ११ अक्तुबर १८७४ के पत्र में उन्होंने गाँधी जी के लिए संबोधन किया है- " आत्मार्थी गुणग्राही सत्संग योग्य बंधुवर मोहनलाल, दर्बान की सेवा में मुंबई से जीवन्मुक्त दशा के इच्छुक राजचंद्र के आत्मस्मृतिपूर्वक यथायोग्य प्रणाम ! " टॉल्स्टॉय और थोरो के प्रभाव के साथ गाँधी जी ने राजचंद्र जी का भी कृतज्ञ स्मरण किया है. इसका प्रमुख कारण यह है कि राजचंद्र जी अपनी राय व्यक्त तो करते हैं, लादते नहीं है. वे जैन परंपरा के अनेकांतवादी विचारधारा के उपासक थे. टॉल्स्टॉय से गाँधी जी का पत्र-व्यवहार हुआ है. अपनी अनाग्रही वृत्ति-दृष्टि के कारण राजचंद्र जी को पूछे हुए प्रश्न उनके अध्ययन-चिंतन की दिशा को स्पष्टता देने वाले हैं. उन प्रश्नों का अध्ययन एक विशेष संदर्भ है. गाँधी जी ने पूछा था कि क्या रामावतार एवं कृष्णावतार सत्य है ? अगर यह सत्य है तो दोनों साक्षात् ईश्वर थे या ईश्वरांश ? उनकी आराधना करने से क्या मोक्ष मार्ग सुगम हो सकता है ? इन प्रश्नों के उत्तर में राजचंद्र जी लिखते हैं कि जी हाँ, दोनों महात्मा पुरुष हैं. आत्मवान होने के कारण इन दोनों को ईश्वर माना जा सकता है. ... ... दोनों को अव्यक्त ईश्वर रुप मानने में कोई बाधा नहीं ... ... मोक्ष प्राप्ति की दिशा केवल अन्यान्य उपासना की नहीं है. आत्मतत्व में जब महात्म तत्व का बोध होगा तब मोक्ष संभव होगा. गाँधी जी ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन देवताओं के स्वरुप को जानना चाहा था. इसके उत्तर में राजचंद्र जी लिखते हैं कि सृष्टि के तीन गुणों की कल्पना कर उनके आश्रय स्थान इन त्रिदेवों का विचार किया जा सकता है. उनके पुराण वर्णित रुपबंध से वे अपनी सहमति नहीं व्यक्त करते हैं. पत्रोत्तर के समापन में हस्ताक्षर करते हुए राजचंद्र जी लिखते हैं- " आत्मस्वरुप के विषय में अखंड निष्ठाभूत विचार के चिंतन में रमने वाले राजचंद्र के प्रणाम कृपापूर्वक स्वीकारें ! " पत्र के उत्तर के साथ उन्होंने गाँधी जी को अनेक बार कुछ ग्रंथ भी अध्ययनार्थ प्रेषित किए हैं. इनमें निम्नलिखित ग्रंथों का समावेश होता हैं - पंचीकरण, मणिरत्नमाला, योगवशिष्ठ ग्रंथ का मुमुक्षु प्रकरण हरिभद्रसूरि जी के ' षड्दर्शन समुच्चय ' ग्रंथ का उल्लेख तो स्वयं गाँधी जी की आत्मकथा में भी पाया जाता है. इस पत्र व्यवहार के माध्यम से गाँधी जी को शांति का लाभ हुआ. धैर्य पूर्वक हिंदू धर्म का गहन अध्ययन करने की प्रेरणा मिली. राजचंद्र जी ने हिंदू धर्म को सूक्ष्म ज्ञानयुक्त गहन गूढ धार्मिक विचार से संपृक्त धर्म माना. धार्मिक क्षेत्र में अहिंसक विचार, तत्वचिंतन में अनेकांतवाद, नैतिक क्षेत्र में व्रतनिष्ठा गाँधी जीवन एवं जीवन दर्शन का बल स्थान है.

५) पंडित सुखलाल जी संघवी

पंडित सुखलाल जी का जीवन पारदर्शी था. उन्होंने ' मारूं जीवन वृत्त ' अर्थात् ' मेरी जीवन कथा ' शीर्षक ' से अपनी आत्मकथा गुजराती भाषा में लिखी है. यह अधूरा आत्मचरित्र है. इसमें सन् १९२१ तक का ही घटनाक्रम समाविष्ट हुआ है. उनके विद्वान शिष्योत्तम दलसुखभाई मालवणिया ने इसका संपादन किया है. पंडित जी ने अपने मित्रों, शिष्यों और यात्रा तथा जीवन की घटनावली का समग्र चित्रण अपने दूसरे ग्रंथ ' दर्शन और चिंतन ' में किया है. यह ग्रंथ १९५७ तक के हर घटना प्रसंगों को अपने में समेटे हुए है.

पंडित जी का जन्म वैश्यकुल में हुआ. उनके पूर्वज जोधपुर से गुजरात पधारे थे. संघ स्थापन करने के कारण उन्होंने ' संघ पति ' की उपाधि पाई. आम तौर पर उन्हें संघवी कहा जाता है. जैन धर्म की स्थानकवासी परंपरा में ८ दिसंबर १८८० को उनका जन्म हुआ. परदादा मावजी,दादा तळशी, पिताजी संघजी. उम्र के चौथे साल में वे मातृसुख से वंचित हो गए. कुल मिलाकर चार भाई बहन. पंडित जी दो क्रमांक के पुत्र थे. विद्याध्ययन के लिए उन्होंने काशी की शरण ग्रहण की. तैरने और घुडसवारी करने में विशेष रुचि थी, यही उनकी वर्जिश थी. विद्यार्थी दशा में उन्होंने साधु जीवन के अनेक चढाव-उतारों का दर्शन किया. जैन साधु-जीवन के साथ अन्यान्य साधु-संतों के जीवन को भी देखा-परखा. उस जीवन की व्यर्थता को जाना-समझा. उस समय तप साधना का अर्थ कायिक तप था. देह दंडन, कर्मकांड, तपाचरण और पारंपारिक शास्त्र चर्चा श्रवण बस, इससे अधिक अर्थ तपसाधना का न था. पंडित जी को यह मान्य न था. वे अंतरंग साधना के आग्रही थे. साधु का आचार सर्व समावेशकता और निर्भयता होना चाहिए यह उनकी अपनी धारणा थी. अपनी धारणा पर वे अटल थे.

उदर निवाह के लिए पंडित जी ने जिनिंग प्रेस में काम करना शुरु किया. उनके साथ और कर्मचारी भी थे. इस काल में देवी का प्रकोप हुआ. तत्कालीन चिकित्सा पध्दति पर प्रकाश डालते हुए जादू टोने की व्यर्थता की चर्चा अपने आत्मचरित्र में पंडित जी ने की है. उपाश्रय में उनकी धार्मिक शिक्षा का आरंभ हुआ. संस्कृत भाषा के अनेक स्मृति वचन एवं कवन उन्हें कंठस्थ थे. उनका मन अब उनके अर्थों की संगति ढँढने में लगा रहा. अमूपचंद मूलचंद के ' प्रश्नोत्तर रत्न चिंतामणि ' का स्वाध्याय किया. वयोवृध्द प्रज्ञाचक्षु लाधा महाराज की प्रेरणा से उनके सत्शिष्य उत्तमचंद के माध्यम से संस्कृत भाषा के अध्ययन का आरंभ हुआ. व्याकरण के पाठ रटे गए. उत्तमचंद जी से लगातार सात वर्षों की पढाई के पश्चात् नई-पुरानी गुजराती, संस्कृत, प्राकृत भाषा के जैन साहित्य एवं दर्शन का अध्ययन संपन्न किया. उनके नियोजित विवाह का प्रस्ताव विफल हुआ. पंडित जी विद्याध्ययन में अधिकाधिक रस लेने लगे. उनका अधिकांश समय उपाश्रय में ही व्यतीत होने लगा. वही उपासना स्थल और वही विश्रांती स्थल बना. इस काल में उन्होंने साधू समाज का बारीकी से अध्ययन किया. विविध अनुभव छटाओं का वे अध्ययन कर पाए. साधु-साध्वियो के लोभ-मोह क्रोध और हठीपन अनेक अनुभव तो उन्होंने पाए ही लेकिन उनके अक्षम्य अपराधों का भी उन्होंने इस काल में अनुभव पाया. इस काल में पंडित जी विद्या में निष्णात माने जाने लगे. धीरे धीरे स्वतंत्र प्रज्ञा के कारण स्वयं उन्हें ही इस विद्या की व्यर्थता का परिचय हुआ और वे इससे दूर हट गए. दुनिया को इस विद्या की निरर्थकता का पता करा दिया. जैन परंपरा और उसमें भी स्थानकवासी परंपरा के गहरे संस्कार उनके मन-मस्तिष्क पर पडे थे. इसी काल में पंडित जी को योग विद्या का ज्ञान हुआ. बालकृष्ण नामक एक जैन साधु ने उनकी मनोभूमि में इस विषय का बीज रोप दिया. ' उचित समय पर अगर मुझे श्रीमद्राजचंद्र जी का सान्निध्य मिल पाया होता तो मैं योगविद्या में प्रगति कर सकता. ' इस प्रकार के उद्गार पंडित जी के हैं लेकिन सांप्रदायिक कलह विचार के कारण स्थानकवासी साधु परंपरा ने उन्हें गृहस्थ मान कर उनका अवमान किया यह तथ्य पंडित जी ने उजागर किया है. यह बात उन्होंने अपनी आत्मकथा में कही है. काशी में जा विद्याध्ययनरत होने से पूर्व काशी के लुटारु पुजारियों का उन्होंने कराया हुआ परिचय

उनकी आत्मकथा के माध्यम से मूल में जा कर ही पढना चाहिए. अमियविजय जी नामक साधु से उन्होंने संस्कृत भाषा का ज्ञान पाया. न्यायशास्त्र, काव्यशास्त्र, अलंकार शास्त्र का अध्ययन किया.

ज्ञानार्जन के मुख्य हेतु की सिध्दि के लिए पंडित जी ने अनेक नगरों का दर्शन किया. वे जैन दर्शनशास्त्र के महापंडित थे. गाँधी जी से चर्चा हप्ते में एक दिन प्रति शनिवार को होती थी. ७ अगस्त १९२६ को उन्होंने गाँधी जी से प्रश्न पूछा था कि ईश्वर को परम पिता माना जाना चाहिए यह आपका तर्क है. इसका आधार श्रध्दा है या सहज निवेदन ? इस प्रश्न के उत्तर स्वरुप गाँधी जी ने कहा था- " इस प्रश्न से सहज ही तर्क करनेवालों में मैं नहीं हूँ. किसीको भ्रमजाल में उलझाने का भी मेरा इरादा नहीं है. मुझे द्विअर्थी वचन बोलना भी नहीं आता. ईश्वर तत्व विषयक किए गए चिंतन के आधार पर ऐसा मेरे द्वारा लिखा गया है. ईश्वर का पिता कौन इस मुद्दे के पास आ कर हम रुक गए हैं. तो ईश्वर को तर्कातीत माना जाना होगा. (तर्कातीत अर्थात् तर्क को स्थान नहीं अथवा यह तत्व तर्क द्वारा जानने योग्य नहीं है या तर्क के माध्यम से जानना योग्य नहीं है ऐसा है.) लेकिन तर्कातीत विषय को यथासंभव तर्क की परिधि में लाने का प्रयत्न करता हूँ. फिर भी अंततोगत्वा यह है श्रध्दा का विषय ! पंडित जी के प्रश्न का भय मैं समझ पा रहा हूँ. क्या वह इस जगत का कर्ता-हर्ता है ? अगर वह ऐसा नहीं है तो व्यर्थ जगत को क्यों खँगाला जाएँ ? (याने दुनिया के तमाम प्रश्न इकट्ठा कर ईश्वरी तत्व से क्यों जोड दिए जाएँ ?) स्याद्वादी वस्तु सभी स्थानों पर वर्णन करने योग्य नहीं होती है. इसका कारण हम ही हैं. हमारी बुध्दि ही परिमित होने के कारण उसकी दौड मर्यादित स्वरुप तक ही है. हम तो चिंटी-कीडे से भी अल्प स्वल्प प्राणी हैं. इसी कारण तो स्वाद्वाद की उत्पत्ति हुई है. इस कारण हम जब तक सर्वज्ञ नहीं हैं और सच्चे को जान लेने की और समझा सकने की शक्ति हम प्राप्त नहीं कर लेते तब तक सर्वज्ञ नहीं हैं. यह शक्ति हम जब तक प्राप्त नहीं कर लेते तब तक कौन किसे किस आधार पर सत्य अर्पण कर सकता है ? इस विचार के उठते ही मैं स्तब्ध हुआ और इस निश्चय तक पहुँचा हूँ कि हमें अपने विचारों को यथावत् प्रकट करने में आनाकानी नहीं करनी चाहिए, डरना नहीं चाहिए. मैं अपनी दृष्टि में खरा हूँ (इसका खंडन करने वाले को भी मैं कहूँगा कि भैया मेरे-आप भी खरे हो ! उसे कहूँगा कि मेरा तर्क अमूक अंश तक जड हो जाता है (और मैं श्रध्दा का आधार लेता हूँ.) बुध्दि से समांतर चलने वाला तत्व श्रध्दा नहीं है. बुध्दि जहाँ कुंठित हो जाती है वहॉंसे श्रध्दा का प्रांत शुरु होता है.

(प्रश्न का स्वरुप ऐसा भी हो सकता है.) क्या ईश्वर कर्ता है ? ईश्वर के मूल में कर्ता भाव बसता है. ईश्वर का अर्थ होता है राज्य कर्ता या शासक ! वह कर्ता है उसी प्रकार अकर्ता भी है. उसके कार्य को हम देख सकते हैं इसलिए वह कर्ता है. इस पाश्चात्य दृष्टिकोण को इसी प्रकार से जान-समझ लिया जा सकता है. इस प्रचंड विस्तार को धारण करने वाला कोई तत्व तो अवश्यमेव होना चाहिए. उसके हजारों नाम हो सकते हैं. या वह अनामा भी रह सकता है. याने ईश्वर शासक या राज्यकर्ता के समान पुरुष हैं भी और नहीं भी हैं. आखिर (इतना तो सत्य ही है कि) वह कोई चैतन्य तत्व है. इस शरीर को धारण करने वाला आत्मतत्व है. उसी प्रकार ब्रह्मांड को धारण करने वाला आत्मतत्व -चैतन्यमय है और है ही है ! "

श्री रमणीकलाल मगनलाल मोदी गाँधी जी की दांडी यात्रा में सम्मिलित हुए थे. वे आश्रमवासी के रुप में जाने जाते थे. उपाधि प्राप्त करने पर वे ओड नामक स्थान पर अध्यापक थे. उनके साथ पंडित जी का ऊपरी परिचय ही था, कोई खास गहरा संबंध नहीं था. पाटण में विद्याध्ययन करते हुए उनके परिचय का विशेष अवसर आया था. जैन शास्त्रों का तो उनका अध्ययन था ही लेकिन वैदिक और बौध्द साहित्य एवं दर्शन का भी उनका सूक्ष्म अध्ययन था. पैतृक संस्कारों के कारण वैसे उन्हें जैन शास्त्र, इतिहास और परंपरा की स्थूल जानकारी थी. वे इस विषय में अधिक सूक्ष्म जानकारी पाना चाहते थे. बडोदा से चलने के पूर्व मोदी जी पंडित जी से मिले थे. कर्म की प्रकृति, स्वभाव, गति इस प्रकार के कर्मशास्त्र विषयक प्रश्नों के संबंध में उनके मन में जिज्ञासा का भाव था. छुट्टियों के काल में दोनों ने इस विषय पर एक साथ बैठ कर अध्ययन करने की बात सोची लेकिन स्थान कौनसा हो ? यह विचार चला तो गाँधी आश्रम में बैठ स्वाध्याय करने जाना तय हुआ. उन दिनों गाँधी आश्रम सरखेज रोड पर था. इसके पूर्व पंडित जी का गाँधी जी से परिचय हो चुका था. दक्षिण अफ्रीका का अपना सफल

कार्यकाल संपन्न कर गाँधी जी हिंदुस्थान लौटे थे. उस समय उनके सम्मान में अहमदाबाद में एक सभा का आयोजन किया गया था. उस श्रोतृ समुदाय में पंडित जी भी थे. उन्होंने पहली पार इसी सभा में गाँधी जी को सुना था. ' कर्मवीर ' गाँधी जी का परिचय अखबारों के माध्यम से हुआ ही था. गाँधी जी के आश्रम की स्थापना हो गई थी. उस समय से उनका आश्रम में आना-जाना था. अनेक बार सायंकालीन प्रार्थना के पश्चात् सायंकालीन भ्रमण काल में उन्होंने पंडित जी से चर्चा भी की थी. ब्रह्मचर्य की सुकरता के संबंध में उनके और गाँधी जी के मतों में साम्य था. रमणिकलाल और पंडित जी ने गाँधी आश्रम में बैठ कर ही स्वाध्याय करने की योजना बनाई. आश्रमीय तपोमय वातावरण से लाभान्वित होने की बात भी उनके मन में थी. मिलने की आशा भी मन में थी. परिचय गहरा होने का लोभ भी था. एकांत स्थल में बैठ कर ग्रंथ का स्वाध्याय करने से पठन में एकाग्रता बढने की बात भी मन में थी. उन्होंने सुविचारित रुप से गाँधी जी को पत्र लिखा. उत्तर स्वरुप ' हाँ, आइए ' पढ़ कर मन मयुर नाच उठा. पंडित जी और रमणिकलाल मोदी ने बिस्तर बाँधा. दोनों तैयार हुए. आश्रमीय जिम्मेदारी उठाने की बात सोची. रमणिकलाल आश्रम जीवन से पूर्वपरिचित थे. पंडित जी ने चक्की पीसने का काम माँग लिया. हालाँ कि उन्हें इस काम का कोई अनुभव नहीं था. यह बात उन्होंने गाँधी जी से कहते ही ' आइए, मैं आपको सिखा दूँ. ' यह कहते हुए गाँधी जी चक्की चलाने में उनकी मदद करने के लिए तत्परता से आगे आए. गाँधी शैली मे प्रत्यक्ष सहभाग से शिक्षा का आरंभ हुआ. स्वयं गाँधी जी ने पंडित जी को चक्की चलाने की दीक्षा दे कर्मयोग का अभिनव पाठ पढाया. पंडित जी और रमणीकलाल जी यथासंभव कर्मप्रवृत्ति का पठन करते. दो-एक बार घूमते-टहलते गाँधी जी ने उन्हें स्वाध्यायरत पाया. स्मित हास्य करते हुए ' अच्छा जी, क्या पढा जा रहा है ? ' ऐसा कहते हुए विषय की परिधि और संदर्भ जान लेने की पृच्छा की. दोनों ने स्पष्टीकरण दिया. गाँधी जी अपने काम की ओर चल पडे. पंडित जी ने इस प्रसंग की आत्मकथा में चर्चा करते हुए लिखा है कि जिस स्थान पर साक्षात् कर्मयोगी सशरीर विद्यमान थे वहाँ हम कर्मशास्त्र के संबंध में निरर्थक माथापच्ची कर रहे थे इस बात का बोध होने पर मन लज्जित हुआ.

आगे पंडित जी ने अध्ययनार्थ काशी की राह अपनाई. यह उनके लेखन विषयक प्रयोग करने का काल था. गाँधी जी की सन्निधि के कारण सादगी और स्वावलंबन का पाठ पढने मिला था. उसका अभ्यास काशी में बैठ करने का निश्चय किया गया. गाँधी आश्रम के अनुसार घी-दूध के बिना रसोईघर की रचना की गई. प्रथम महायुध्द का वह समय था. चक्की पीसने का उपक्रम यहाँ भी जारी रहा. व्यायाम और आनंद का महोत्सव जागा.

जिनविजय जी की पुकार सुन पंडित जी पुणे गए. वहाँ विविध महाविद्यालयों में पढने वाले और छात्रावास में निवास करने वाले छात्रों के लिए दर्शन शास्त्र पढ़ाने की जिम्मेदारी उन्होंने स्वीकार की. जिनविजय जी गाँधी तत्वज्ञान से प्रेरित कर्मयोगी जैन साधु थे. यह वह समय था जब धर्मानंद जी कोसंबी फर्ग्युसन महाविद्यालय में पाली विषय के प्राध्यापक थे. उनकी भविष्यदर्शी दृढ मित्रता का बीजवपन इसी काल में हुआ. काशी में दुबारा मिलना हुआ. जैन-बौध्द दर्शन के तुलनात्मक अध्ययन को दिशा एवं गति मिली. गाँधी जी के साथ पधारे आचार्य कृपलानी जी से इसी काल में परिचय हुआ. यह मैत्रभाव आगे खूब विकसित हुआ. पंडित जी ने सुचेता कृपलानी को भी संस्कृत पढाया.

गोखले जी के भारत सेवक समाज में एक बार अचानक पंडित जी की मुलाकात होने पर गाँधी जी ने ' अरे, आप यहाँ ? कैसे ? क्या चल रहा है ? ' कह सब जानना चाहा. पंडित जी ने जैन दर्शन शास्त्र का अध्ययन करने की बात बताई. अपनी विशिष्ट स्मित साधना के साथ ' अच्छा जी ! ' कहते हुए गाँधी जी ने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव इन चार संज्ञाओं की परिभाषा जानना चाहा. पंडित जी ने अपने ग्रंथ ' गाँधी जी के साहचर्य में ' में इस प्रकार के अनेक संस्मरण लिखे हैं. गाँधी जी सैध्दांतिक तत्वमीमांसा को व्यावहारिक आधार देने के लिए प्रयत्नशील थे. उस समय पंडित जी के हाथों में श्री गोपालदास बरैया का ' जैन सिध्दांत प्रवेशिका ' ग्रंथ था. गाँधी जी धर्म और दर्शन का अध्ययन किसी पोथी पंडित की शैली में नहीं करते थे. उन्हें सजीव प्रश्नों में रस लेने वाले जीवनस्पर्शी दर्शन की खोज थी. यात्रा करते समय विविध प्रकार के व्यवधान और मन-बुध्दि पर नाना प्रकार के

तनावों का ताना-बाना होते हुए भी अपने साथ गाँधी जी धार्मिक ग्रंथ अवश्य रखते. यथासंभव उसे पढते, चिंतन करते. व्यवहार्य भूमिका समझते-समझाते. यह केवल गाँधी जी ही कर सकते थे.

अपने समय के सखा-सहयोगियों की चर्चा करते हुए पंडित जी की आत्मकथा में मित्र, सहयोगी, मार्गदर्शक तत्त्वचिंतकों की सूची में रमणिकलाल मोदी, आचार्य कृपलानी, सुचेता कृपलानी के भरपूर उल्लेख आए हैं. अपने ' दर्शन और चिंतन ' ग्रंथ में पंडित जी ने गाँधी जी के साथ ही विनोबा जी, जिनविजय जी, धर्मानंद कोसंबी इन साधक सहयोगियों का भी गौरवपूर्ण उल्लेख किया है. ' गाँधी जी और जैनत्व ' तथा ' गाँधी जी का जीवन धर्म ' शीर्षक के दो लेख तो जिज्ञासुओं को मूल में जा कर ही पढने चाहिए. गाँधी जी और जैन धर्म का विचार प्रतिपादित करते हुए वे लिखते हैं कि एक बहुत ही आश्चर्यकारक बात है कि आज दुनियाभर में फैले हुए नाना पंथोपपंथ के जानकार प्रयत्नों में लगे हैं कि गाँधी जी उनके धर्म का स्वीकार करें लेकिन उनका अपना जो सनातन हिंदू धर्म है वह उनके बारे में सहानुभूति व्यक्त करते हुए नहीं दिखाई देता. सच्चा महान पुरुष अपने व्यक्तित्व के इर्द गिर्द किसी भी प्रकार के धर्म-पंथ-मत-तत्ववाद की परिधि नहीं निर्मित करता. यह विचार प्रस्तुत कर पंडित जी ने अपने लेख का समापन किया है. पंडित जी गाँधी जी की धर्मकल्पना को नवीन मानते हैं. पुराने पर नए का कलम करने वाला उनका धर्म विचार सही माने में जीवनधर्म है ऐसा लिखने वाले पंडित जी की सार्थ दृष्टि है. गाँधी जी इस भूतल पर ही मोक्ष और स्वर्ग की संभावना से भरपूर रहे. वे अनन्य हैं. उनका जीवनधर्म जीवनस्पर्शी, ईहवादी और परमार्थ युक्त है यह पंडित जी का निष्कर्ष है.